मृत्यु शोक की शान्ति

लक्ष्मीधर
(मिशन कालिज, देहली)

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवति नान्यथा
(वाल्मीकि)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।

मृत्यु शोक की शान्ति

लेखक

लक्ष्मीधर

[मिशन कालिज, देहली]

प्रथम बार } ❀ { फ़रवरी १९३७

मुद्रक
चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस,
देहली ।

स्वर्गीय आत्माओं की पुण्य-स्मृति

में

सश्रद्धा समर्पित !

भूमिका

अपने ही समझने के लिये यह लेख लिखा था। किन्तु यह समझ कर कि मृत्यु से सब लोग पीड़ित हैं, कभी न कभी ऐसी चीज़ की सभी को ज़रूरत पड़ती है। शोकावस्था में किसी प्रकार आश्वासन दिलाना उचित ही है। इस भाव से पुस्तकरूप में यह लेख छपवा दिया, कदाचित् किसी दुखी मनुष्य की दृष्टि पड़ जाय और इसके पढ़ने से उसके शोक-व्रण पर कुछ शीतलोपचार हो! यदि किसी एक दुखी पुरुष का भी इसे पढकर कुछ दुःख दूर हो सके तो यह परिश्रम सफल होगा। जो स्वतन्त्र विचार इस लेख में प्रकट किये हैं यदि विद्वान उन पर अधिक प्रकाश डालें तो महान उपकार होगा। इन विचारों के समर्थन में जो प्रमाण उद्धृत किये हैं, एक वाक्यता सिद्ध करने के लिये उनकी व्याख्या करना आवश्यक है॥ किमधिकम्—

बियुज्यमानेऽपि तरौ पुष्पैरपि फलैरपि।
पततिच्छिद्यमाने वा तरुरन्यो न शोचते॥
यस्तु दृष्ट्वा परं जीर्णं व्याधितं मृतमेव च।
स्वस्थोभवति नोद्विग्नो यथाऽचेतास्तथैव सः॥
न चानुवर्तनं तन्मे रुचितं यत्र नार्जवम्।
सर्वभावेन सम्पर्को यदि नास्तिधिगस्तुतत्॥

(अश्वघोष—बुद्धचरितम्)

देहली
१ जनवरी, १९३७

—लक्ष्मीधर

विषय–सूची

—❀—

❀ ❀ ❀

जीवन-सुन्दरी

एक दुखी मनुष्य मृत्यु-शोक से पीड़ित होकर जीवन से हताश, भूमि पर अचेत सा पड़ा है। इस शोकावस्था में उसे अद्-भुत मानस-प्रत्यक्ष होता है। एक प्रकाशवती स्त्री उसे आकर प्रबोधित करती है और कहती है—हे प्राणवल्लभ! मैं जीवन-वधू तुम्हारी सतत-सहचरी, तुम्हारे सन्मुख खड़ी हूँ, तुम मुझ से क्यों विमुख हो रहे हो? मैं तुम्हारी परम सखा हूँ। मेरा तुम्हारा अविनाभाव है। मैं तिरस्कार की पात्र नहीं॥

जीवन-वधू का यह मधुरालाप सुन कर दुखी मनुष्य के हृदय की वेदना और भी बढ़ने लगी और वह विकल स्वर से बोला—

रे चपल सुन्दरि ! तेरा विद्युद्विलास ह्लासकारी है। मेरा अब तेरे साथ निर्वाह नहीं। मुझे प्रतीत हो गया, कि तेरा प्रत्यय असत् है। तेरी निष्ठुरता लोक परलोक में विदित है। रे पुत्रादिनि ! जिस प्रकार महाराज शान्तनु की स्त्री गङ्गा अपनी सन्तान को आप मार डालती थी, उसी प्रकार तू जिसे पैदा करती है उसे आप खा जाती है ! रोता हुआ बच्चा तेरी गोद में आता है, दूध पिला कर तू उसे बड़ा करती है। फिर एक दिन अपना वार करती है और निर्दयिता से उसका दम घोट देती है। रे पतिघ्नि ! चण्डी रूप धारण करके तू अपने शिव-स्वरूप पति का आघात करती है और उसके शव पर हास-पूर्वक नृत्य करती है ! तेरे माधुर्य में हलाहल है ! तेरे वक्षःस्थल में हृदय नहीं पाषाण है ! तेरे सुख का अनुभव अयथार्थ है ! तेरी आशा असत्-ख्याति है ! दुःख तेरा नित्य दोष है ! तू अनित्य है ! अनात्म है !

दुखी मनुष्य के यह प्रखर वचन सुनकर जीवन-सुन्दरी कोमल स्वरसे कहने लगी हे वर ! जिस प्रकार निगम ग्रन्थोंमें शिवजी पार्वती से उपदेश ग्रहण करते हैं, उस प्रकार तुम भी मेरा वचन आदर-पूर्वक सुनो। दुःख के कारण तुम मेरा निरादर करते हो। सुनो, दुःख मेरा उद्देश्य नहीं। मैं दुःख को प्यार नहीं करती। यह दुःख रूपी भ्रमर मुझ कमलिनि रूप जीवन-सुन्दरी पर मुग्ध होकर मुझे आप आ चिमटता है। किन्तु यह मेरा सगन्ध नहीं। मेरा सुगन्धित रूप

प्रेम है। इस पर दुःखका पदाघात बलात्कार होता है मानों प्रेम का गुण दुःख है ! मुझे अपने प्रेम-स्वरूप के कारण सब दुःख सहन करना पड़ता है। यदि मैं दुःख का त्याग करूं तो मुझे अपने प्रेम-स्वरूप का भी त्याग करना होगा जो मेरे लिये आत्मघात है। मेरे प्रेम स्वरूप का प्रवाह दुर्दैव से दुःख की धाराओं ही में बहता है। जीवन की ऊर्ध्वगति तथा अधिक सुख की प्राप्ति के लिये मुझे विधिवश मृत्यु का द्वार भी झांकना पड़ता है और सब दुखों का तो कहना ही क्या है !

तुम जानते हो प्रेम का यह रहस्य है कि वह अपने से बाहर जाए और एकमें दो का अनुभव करे।[1] इस अपने प्रेम-स्वभाववश मैं जीवन-शक्ति एक होकर भी अनेक नाम रूप धारण करती हूँ कि अनेक विशेषों में सामान्य का अनुभव होने से प्रेम की अतिशय तृप्ति हो। मैं देह से उत्पन्न नहीं होती, देह मुझ से उत्पन्न होता है। प्रेमवश देह धारण करती हूँ और प्रेमवश ही देहका परित्याग करती हूँ। मनुष्य मेरे इस जीवन-रहस्य को नहीं जानता और दुःख पाता है। जीवन मेरा स्वभाव है, इसलिये मैं मरती नहीं, अमर हूँ। शरीर मेरा नेपथ्य है। मैं सदा सशरीर हूँ, मुझे नग्न रूप आज तक किसी ने नहीं देखा ! स्थूल शरीर छुटने पर उसका कारण रूप आतिवाहिक[2] शरीर मेरे साथ बना रहता है जिसे लेकर मैं परोक्ष गति को प्राप्त होती हूँ और मरने पर मेरी कुछ भी

हानि नहीं होती वरन् उन्नति तथा सुखका द्वार खुल जाता है ॥

तुम जिनके मरने का शोक करते हो वह वास्तव में मरे नहीं। पीड़ित शरीर का त्याग कर नाम रूप सहित आनन्दमय शरीर के साथ वह सुखपूर्वक परलोकमें निवास करते हैं, जहां तुमसे उनका अवश्य मेल होगा। वह स्थूल-देहमुक्त होकर अब भी तुमसे मिलते हैं। अविज्ञात रूप से तुम्हारी सहायता करते हैं, पर तुम देहबंधन के कारण उन्हें नहीं देख सकते। मर कर तुम उन्हें देख सकोगे, और सब प्रियजनों से मिल कर उनके साथ पितृवन में विहार करोगे, यह बात निश्चय जानो ![3] कारण यह, कि जीवित जगत् में उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होती हुई मैं जीवन-शक्ति मनुष्य-शरीर पाकर सचेत हो चुकी हूँ। मेरी प्रतिबोधात्मक शक्ति मनुष्य शरीर में विकसित होकर कदापि क्षीण नहीं हो सकती। उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होना मेरा जाति-धर्म है। देखो, पर्वतों में मैं अचेत सोई पड़ी हूँ। वृक्षों में मेरी स्वप्नगति है। पशु-पक्षियों में जाग्रत हुई हूँ पर स्मृतिहीन हूँ। मनुष्यरूप मेरा प्रथम देह है जहां मुझे अपने आपे का बोध हुआ है और आत्मप्रतिपत्ति प्राप्त हुई है। लोकयात्रा में मनुष्यतीर्थ मेरा वह पुण्यतीर्थ है जहां मैं स्मृतिशील बनी हूँ, इस तीर्थ को मैं कदापि नहीं भूल सकती। स्मृति मेरी आत्मवृत्ति है, शरीर नाश होने पर इसका नाश नहीं हो सकता। अब स्मृतिशील होकर मेरी निष्कम्प प्रवृत्ति है कि अनेक नामरूप जो मैंने प्रेमवश[४]

रचे हैं इनको अनेकता में अपनी एकता का प्रत्यभिज्ञान हो और प्रेम-जीवन सफल हो। अन्यथा मेरी सारी लोकयात्रा निष्फल है, सब जीवन उपहासमात्र है, वञ्चना है! इसलिये निश्चय जानो कि तुम्हारा परलोक-गामियों से मेल होकर प्रत्यभिज्ञान होगा, लोक-जीवन अपनी सार्थकता के निमित्त परलोकमें परिपूर्ण होगा। जिस प्रकार पर्वतादि की जड़ प्रकृति में मनुष्य-जीवन के धर्म विकसित नहीं हो सकते उसी प्रकार मनुष्यदेह में, देहोत्तर विकास होने वाला संपूर्ण अमर-जीवन प्राप्त नहीं होता। यह अमर-जीवन प्रत्यभिज्ञान द्वारा सौहार्द तथा संगतिरूप में, सृष्टिविकास के नियमानुकूल, परलोक में स्वतःसिद्ध है। इसलिये शरीरपरिधान के त्याग का शोक न करके, चोला छोड़ने से प्रसन्न होकर मेरी हितकारी प्रवृत्ति में आशा रखना उचित है। मरनेवाले पर मेरा परमहित है। मेरी प्रेमगति उसके साथ अधिक वेग से काम कर रही है, क्योंकि उसके लिये नवजीवन का द्वार जो औरों के लिये अभी बन्द है, खुल गया है!

मृत्युत्रास जो मनुष्य को सताता है पर्वतादि निकृष्ट सृष्टि को नहीं सताता, जहां मैं अधिक से अधिक तोड़-फोड़ भी करती हूँ। कारण यह कि मनुष्य-जीवन स्मृति-सम्पन्न होनेसे सचेत है और सचेत होकर अभी अप्रतिबुद्ध है। इसलिये मनुष्य अपने अनजानपन में प्रत्यक्ष से परोक्ष-भाव होने पर दुःख मानता है। किन्तु

मैं जीवन-शक्ति कदापि मरती नहीं, मरकर भी जीती हूँ। मैं नित्य हूँ और मेरे नामरूप भी, मेरे होने से, नित्य हैं। स्थूल का चिह्न सूक्ष्ममें सदा बना रहता है; यह बात तुम्हें नवयन्त्र रेडिओ, ग्रैमोफोन, टैलिविज़ॅन आदि से भी प्रतीत हो सकती है। वास्तव में सूक्ष्म ही सद्रूप है इसी की देशकालयुत रूपरेखा का नाम स्थूल शरीर है। स्थूल शरीर मनुष्य का अङ्ग नहीं बाह्य सामग्री है। देखो, नेत्र नहीं देखता; स्वप्नमें मनुष्य विना नेत्र भी देखता है। ऊंचे वृक्ष पर से फल तोड़ने के लिये मनुष्य जिस प्रकार लकड़ी का ग्रहण करता है, उसी प्रकार बाह्य पदार्थों को ग्रहण करने के लिये हाथ का आयोजन करता है। हाथ कटने पर दूसरा हाथ भी लगा दिया जाता है। लकड़ी के समान हाथ भी मनुष्य से अलग वस्तु है। इसी प्रकार सब शरीरको जानो। मनुष्य की उपस्थिति, इच्छा, प्रयत्न, इन्द्रियत्व अर्थात् मनुष्य का संपूर्ण जीवन स्थूलाकार से परे सुघटितरूप में विद्यमान है, जिसको मृत्यु स्पर्श नहीं कर सकती ॥

स्तम्ब से ब्रह्म पर्यन्त सब जगत् मेरा स्वरूप है। शिव भी बिना मेरी शक्ति के शव समान है, चण्डीरूप इसी अर्थका उदाहरण है। गङ्गा ने शान्तनु के पुत्रों का वध नहीं किया, मर्त्यलोक से गन्धर्वलोक भेज कर उन्हें उच्चगति शीघ्र प्रदान की—यह इतिहास है। जीवन-मरणके विषयमें मेरी जांच हितकर, प्रीतियुत तथा निर्दोष है, तुम्हारी अल्पज्ञ होनेसे सदोष है। जीवित पुरुष दुखी होने से शोच्य

हो, पर नव-जीवित जो मृत कहलाता है सुखी होने से सदा अशोच्य है !

जीवन सुन्दरी के इस वचनामृत की वर्षा से दुखी मनुष्य का संतप्त हृदय सिञ्चित हुआ और उसमें आशाका अंकुर उत्पन्न होने लगा। वह बोला, हे जीवन-सुन्दरि ! तुम्हारा वचन शोक निर्वापण करने में समर्थ है तथापि प्रियवर के देहत्याग का दारुण दुःख मेरी चित्त भूमि में वज्र से कीलित है। तुम जीवन की सत्ता हो इस लिये मरने मारने का अपराध तुम्हारा नहीं हो सकता, किन्तु मृत्यु का अवश्य है ! मृत्यु से मेरा समागम होना उचित है, वह क्या कहती है ! जीवन-सुन्दरी बोली—मृत्यु का मेरे साथ अन्योन्याभाव है। वह मेरे स्थूलाकार का बारंबार प्रध्वंस करती रहती है। यद्यपि मेरे सूक्ष्म शरीर को हाथ नहीं लगा सकती तथापि मेरे स्थूल देह पर उसका अधिकार चल ही जाता है। किन्तु यहां भी उसे हताश होना पड़ता है क्योंकि मैं उसके बिगाड़े रूप को सूक्ष्म में अधिक सुन्दर बना देती हूँ। मैं उस सपत्नी का मुंह नहीं देख सकती। जबतक मैं तुम्हारे पास हूँ, वह समीप आ भी नहीं सकती। लो, मैं तिरस्करिणी रूप धारण करती हूँ, वह आ रही है !

(जीवन-सुन्दरी तिरस्करिणी वेष धारण करती है,

मृत्यु-कन्या प्रवेश करती है)

❀ ❀

मृत्यु कन्या

(सूर्य पश्चिम दिशा में डूब जाता है ! लोक में अन्धकार फैल जाता है। चित्ताकाश में एक नीलवर्ण कन्या की छाया दिखाई पड़ती है। उसे देख कर दुखी मनुष्य पुकारता है।)

दुखी मनुष्य—हे मृत्यु कन्ये ! आओ, आओ ! तुम इतना विलम्ब क्यों कर रही हो। मैं तुम से मिलने के लिये परम उत्सुक हूँ।

मृत्यु कन्या—(मुंह मोड़कर) मैं किसी के बुलाने से नहीं आती हूँ। जब मुझे आना होगा आप आजाऊंगी। बाहर के मन से तुम मेरा अनुराग प्रकट करते हो किन्तु तुम्हारा अदृष्टमन जीवन-सुन्दरी ही को चाहता है। यदि ऐसा न होता तो तुम मृत्यु का शोक न करते। मृत्यु का शोक जीवन का प्रेम है !

दुखी मनुष्य—मुझे अपनी मृत्यु का तिल मात्र भी शोक नहीं। प्रियवर के मृत्युशोक से संतप्त हूँ। तुम्हारे शीतल स्पर्श से जीवन-ज्वर अवश्य दूर होगा। आओ, तुम इतनी कठोर क्यों हो कि किसी के बुलाने पर भी नहीं आती हो, और इतनी धृष्ट क्यों हो कि कहीं बिन बुलाये भी चली जाती हो! मैं तुम्हें अपने प्राण देना चाहता हूँ। आओ, मुझे अपना वर स्वीकार करो, और अपने हिमपाणि के स्पर्श से मेरा चित्तदाह हरो॥

मृत्यु कन्या—मैं कुल की कन्या हूँ। मेरे पिता का नाम काल है। पिता की आज्ञा बिना मैं किसी को नहीं वर सकती। सुनो, मुझे यह शाप भी है कि जिस पुरुष के साथ मैं पाणि-ग्रहण करती हूँ वह मेरे अङ्गस्पर्श के सुखसे तत्काल मूर्छित हो जाता है॥ मेरे इस सुख-संसर्ग से जब मूर्छित पुरुष के शरीर का सब ताप दूर हो जाता है और जब मैं उसे पीड़ित शरीर से छुड़ाकर दिव्य-शरीर के साथ अपनी मृत्यु-क्रीड़ा के लिये ले जाने लगती हूँ तब शीघ्रही उसकी मूर्छा भङ्ग होती है, वह सचेत हो जाता है, और मेरा मुख देखे बिना ही मुझे तिरस्कार कर वह दिव्यदेहधारी जीवन-सुन्दरी को ब्याह लेता है और अपने पितरों से मिलने के लिये पितृलोक को सिधारता है॥ मैं वंचित रह जाती हूँ। मुझे वर का सौभाग्य कदापि प्राप्त नहीं। मैं तो बस जीवन-सुन्दरी की किंकरी हूँ। उसके लिये वर ढूंढ ढूंढ

कर लाती हूँ। वह रानी है मैं उसकी दासी हूँ। वह प्रकाश है मैं उसकी छाया मात्र हूँ। मेरी अलग कोई सत्ता नहीं॥ मृत्यु-द्वार जीवन-प्रासाद की ओर ही खुलता है॥ इस लिये मरने की आशा, जो निराशा है, उसे छोड़ कर दिव्य-जीवन की प्राप्ति की चेष्टा करो, और मृत के समान होकर सजीव रहो। अपने तईं भुलाकर, अपने प्रियवर के निमित्त, लोकका उपकार करते रहो॥ मेरा भी यह ही उद्यम है। अपना सुख न पाकर सदा लोक का उपकार करने में तत्पर हूँ। जिस पीड़ित पुरुष पर हाथ धरती हूँ उसे धाई की नाईं सुख की नींद सुलाती हूँ। उसके शरीर का रोग हरती हूँ। सब प्रकार के दुःख का उपशमन करती हूँ। नवजीवन का द्वार खोलती हूँ। तिस पर भी लोग मुझे हत्यारी कह कर वृथा कलङ्कित करते हैं और मुझ से डरते हैं॥ रात्रि को सब संसार मेरी शरण आता है फिर भी मुझ से भय मानता है। किसी को भी ज्ञात नहीं होता कि वह किस क्षण सोता है, किस क्षण जाग्रत अवस्था से स्वप्न अवस्था में आता है। यह मूर्छाक्षण ही मृत्युकाल है। यह अचेतन-काल चेतन को एक अवस्था से दूसरी अवस्था में ले जाता है। किन्तु इस मृत्युकाल में चेतनाघात नहीं होता और न सूक्ष्मशरीर का नाश होता है, यह बात जाग्रत-स्वप्न दृष्टान्त से स्पष्ट है॥ मरने पर भी जीवन का सातत्य बना रहता है,

बिगड़ता नहीं। मरणोत्तर-जीवन स्थूल-शरीर के व्यवधान से दृष्टिगोचर नहीं होता। स्थूलशरीर जीवन की सूक्ष्मगति का बाधक है॥ मृत्युद्वारा शरीराघात प्रत्यक्ष में है, परोक्ष में नहीं। अवस्थाभेद से परोक्षापरोक्ष है॥ समानावस्था प्राप्त होने पर जब तुम्हें परोक्ष प्रत्यक्ष हो जायगा तब शरीरसाकल्य भी प्रकट होगा। तुम जिनको मरा समझ कर रोते हो उनका साक्षात्कार होगा। वह मरे नहीं, सशरीर अवस्थान्तर को प्राप्त हुए हैं। मनुष्य के दिव्यशरीर की छाप जो देशकाल पर पड़ती है उसके मिटने को तुम मृत्यु कहते हो। किन्तु प्रतिकृति अर्थात चित्र के मिटने से प्रकृति अर्थात जिसका चित्र है वह नहीं मिटता, क्योंकि वह उससे पृथक् है। इस बातको समझनेके लिये विशेष रूपसे शास्त्र पढ़नेकी आवश्यकता नहीं। मरते हुए पुरुष का स्वयं निरीक्षण करो, तुम को विदित होगा कि पुरुष मरता नहीं, शरीर छूटता है—वह भी स्थूल शरीर न कि सूक्ष्म शरीर जो स्थूलकी तन्मात्रा अर्थात सद् रूप है और जो मरने पर ज्यूं का त्यूं बना रहता है॥ मैं कह चुकी हूँ कि मनुष्य को रोग का कष्ट भले ही हो किन्तु मूर्च्छाके वश मरनेका कष्ट नहीं होता। प्राणनिष्क्रमण के समय अङ्गों का स्पन्दन जो दिखाई पड़ता है वह शरीर की अचेत प्रतिक्रिया है। कुसुम के समान कोमल बालक भी मेरी गोद में खेलते हुए आते हैं। देखो यह

वर आसन्नमृत्यु दशामें सामने पड़ा है। मैं इसके साथ पाणि-ग्रहण करने जाती हूँ। तुम इसके प्राणो-द्वाह का निरीक्षण करो, तुम्हें वरप्रस्थान का बोध होगा। यह बोध होगा कि यह मरा नहीं इसने शरीर से प्रस्थान किया है॥ जिस मौत के घाट पर दिनरात संसार उतरा चला जारहा है, जो प्रकृतिसुकुमार स्त्रियों और बालकों तक के लिये दुस्तर नहीं, वह मृत्युसमागम इस वीर युवक के लिये अवश्य कन्दुकेलि के समान क्रीड़ामात्र होगा॥ लो अब मैं चली, तुम असाध्वस रहो, नियतकाल पर तुम्हें भी लेने आऊंगी।

(मृत्यु कन्या चली जाती है और उसकी छाया एक रोगी पर पड़ती दिखाई देती है।)

❀ ❀

परलोक गमन

(एक रोगी शय्या पर पड़ा है। वह समझ गया है कि अब नहीं बचूँगा, अन्त समय सब बन्धुओं को बुलाकर प्यार करता है। बीस बरस पहले बचपन की प्यारी बातें दोहराता है। भविष्य में गृहप्रबन्ध की साधु शिक्षा देता है। चित्त प्रसन्न है। मुंह पर मधुर मुसकान है। मुसकरा २ कर सब को धीरज दिलाता है, कहता है, मुझे अब कोई तकलीफ़ नहीं है, दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गई है! बातें करते २ मूर्च्छा आती है और चली जाती है। फिर धीरज की बातें करने लगता है। फिर मूर्च्छा आती है। एक दम आंखें फिर जाती हैं और प्राण छुट जाते हैं॥ हा! यह रोगी दुखी मनुष्य का ही प्रियवर है!)

प्रियवर की मृत्यु का दारुण दृश्य देखकर दुखी मनुष्य का

हृदय शतशः विदीर्ण होता है पर वह अलौकिक धीरज धर कर विचार करता है। यह क्या लीला है? क्या मनुष्य शरीर का परिणाम है, जैसे दीपशिखा दीपक का? तेल बत्ती के न होने पर या प्रबलवात का झोंका लगने पर जैसे दीवे की लौ बुझ जाती है उसी प्रकार देह का नाश होने पर क्या देही का भी नाश हो जाता है? नहीं। कारण यह, कि जैसे दीपक का प्रकाश भी बिना द्रष्टा के नहीं होता। दीपक दीपक को नहीं भासता। दीपक का द्रष्टा दीपक से इतर है[४]॥ इसी प्रकार देही जो देह का द्रष्टा है देह से इतर है, देह का परिणाम नहीं। देह से पूर्व है, क्योंकि देह तथा अन्तःकरण का साक्षी है॥ उनकी परीक्षा करता रहता है। परीक्ष्य से परीक्षक सर्वथा भिन्न है। यदि देह से देही भिन्न नहीं, तो देह के विकृत होने पर तदनुसार देही विकृत होना चाहिये था। सो नहीं॥ देखो शरीर के जर्जरित होने पर भी यह प्रियवर अन्तकाल तक सब प्रकार निर्जर रहा। इसके मुख की मुसकान, मन का धैर्य, बुद्धि का विमर्श, अन्त तक, शरीर की पीड़ा तथा मन बुद्धि के विकारों का विप्रतिषेध करते रहे॥ शरीर का परामर्श करनेवाला होने से यह वशी शरीर से इतरजाति का है। यह स्वयं मरा नहीं, मरने का साक्षी था जो यह कह रहा था—'मैं प्रसन्न हूँ, अब शरीर छुट रहा है!' यदि यह स्वयं देह होता तो इसे देह का प्रतिबोध नहीं हो सकता था॥ स्मृति-बोध-शील-सम्पन्न देही को सहसा देह

त्याग करता देख यह प्रतीति नहीं होती कि वह एक दम अभाव को प्राप्त हो गया ! देही के नाश होने का कोई प्रमाण भी नहीं है। देही का देह पर व्यापार छुटने से देही मरा नहीं कहा जा सकता, फ़ालिज इसका उदाहरण है।। और देहको देही माना नहीं जासकता। विज्ञानवेत्ता जानते हैं कि जीवनके हर सात बरसमें सब देह समूल बदल जाता है। एक ही जीवन में मनुष्य कई देह बदल लेता है। यदि मनुष्य देह होता और उसकी चेतना मस्तिष्कका व्यापार होती तो बीस बरस पहलेके 'पूर्व देह' अथवा 'पूर्व मस्तिष्क'की तादात्म्य स्मृति इस एकही देहमें उसे कैसे उत्पन्न होती ! कालके एक क्षणसे दूसरे क्षण पर वह कैसे पारङ्गत होता ! यदि मनुष्य देह होता तो देह पात होते समय, देह की मरण-प्रकृति के विरुद्ध इसके चित्तमें भविष्य-जीवन की आकांक्षा कैसे प्रस्फुरित होती ! अवश्य ही, देह-पात होने पर देही की सत्ता बनी रहती है। मानव-हृदय की यह अन्तर्दृष्टि यदि मिथ्या है, तो सब जीवन ही मिथ्या है !

प्रश्न है, यदि यह प्रतीति सत्य है कि पुरुष मरता नहीं तो मरने का शोक क्यों होता है ? यह संस्कारों का प्रभाव है जो कदाचित ज्ञान से भी प्रबल होते हैं। मनुष्य के सब व्यवहार शरीर के उप-चार से संपन्न होते हैं। उपचारवश शरीर को शरीरी मानकर व्यवहार होता है। शरीर द्वारा ही परिचय, सखाभाव, सब प्रकार के स्नेह की संपत्ति प्राप्त है, इसलिये प्रियप्राणी का शरीर लुप्त

होने पर बन्धुजन के हृदय में शून्य व्याप जाता है, कलेजा कट जाता है, मन अधीर होजाता है, संस्कार रो उठते हैं—हा तात! हा प्रिय! यह कह कर सब रोने और पुकारने लगते हैं! किन्तु शोक यद्यपि संस्कार-जन्य है परन्तु अयथार्थ नहीं। शोक संस्कार-रूप है। संस्कार का आलय विज्ञान है। विज्ञान का आश्रय आत्मा है। बिना विज्ञान आत्मा शून्यवत् है। शोक विज्ञान-रूप होने से आत्मा से सम्बद्ध है, इसलिये यथार्थ है॥ शोक क्या है? प्रेम का आघात है॥ प्रेम आत्माका स्वरूप है। इसलिये न केवल संस्कार द्वारा, परंच प्रेमके अनुषङ्गसे भी, शोककी आत्मा से सनाभिता है॥ आत्मा के प्रेम-स्वभाव अथवा अभिव्यापी आत्म-संस्कार का, जो अमर रूप है, किंचितकाल के लिये निरोध भला ही हो जाय, परंतु सर्वकाल के लिये आघात नहीं हो सकता॥ किन्तु मृत्यु द्वारा इस लोक में प्रेम का प्रबल आघात हुआ है, मानव-हृदय पर तीव्र कुठार पड़ा है, इसलिये प्रेम की परलोक में पूर्णतृप्ति होना जीवन की सार्थकता के निमित्त, मानव-हृदय की प्रबल उत्कण्ठा के अनु-रूप, परमावश्यक है। अन्यथा मनुष्यजीवन और उसका सब साहित्य, सब नियमधर्म नीरस और निस्सार है, निर्मूल है, और विडम्बना-मात्र है! इसलिये यह निश्चय होता है कि हमारा प्रियवर नश्वर शरीर के छुटने पर दिव्य शरीर के साथ सुखपूर्वक परलोक में विराजमान है॥ हम अवश्य मरेंगे, मर कर उससे मिलेंगे और

हमारे प्रेम की सम्यक् तृप्ति होगी॥ यह भावना न केवल सान्त्ववाद है किन्तु सृष्टि-विधिके अनुकूल सम्यग् दृष्टि है। देहत्याग होने पर मनुष्यका इस लोकमें पुनर्जन्मवाद असमञ्जस है[६]॥ स्मृति-शील होने के कारण, सृष्टिविकास के नियमानुसार, मरणोत्तर, मनुष्य का स्थान पितृलोक में है; जहां तत्तत् परिचित रूप में प्रियजनों के प्रत्यभिज्ञान का अवकाश प्राप्त है। यह प्रेमरूप प्रत्यभिज्ञान ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है[७]॥

इस प्रकार प्रियवर के सम्मिलन की आशा से दुखी मनुष्य का म्लानचित्त कुछ विकसित हुआ और आत्मघात की चेष्टा मन्द हुई। जब शोक के अन्धतामिस्र पर आशा की सुवर्ण किरण छटकी तो शोक का तमोरूप अन्धकार सतोगुण के प्रकाश से भासमान होने लगा॥ इस मानस-अवस्था में शोक से विषाद, विषाद से वैराग्य, वैराग्य से कर्मसंशुद्धि तथा ज्ञान की उपलब्धि मान कर दुखी मनुष्य की शोक में प्रबल आस्था उत्पन्न हुई और सात्त्विक शोक उसके मन का स्थायी भाव बन गया॥ सुखी मनुष्य अपने हर्षोन्माद में मृत्यु का चर्चा सुनना नहीं चाहते, इसलिये सब से अलग रहकर, जीवन के हर्षविलास से पराङ् मुख, यह दुखी मनुष्य, शोक में निमग्न, एकाकी चिन्तन करने लगा॥

❀ ❀

शोकानुचिन्तन

यह सब सच है कि मनुष्य-जीवन अमर है तथापि पांचभौतिक शरीर का त्याग सर्वथा दुःख-जनक है। मारना जैसे पाप है उसी प्रकार मरना भी अवश्य पाप है क्योंकि दोनो दुखदायी हैं। प्रश्न है, मरने मारने के अपराध का भागी कौन है ? मरना कोई नहीं चाहता फिर मौत क्यों आती है ? क्या रोगवश मृत्यु प्राप्त होती है ? यदि एसा है तो आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि आदि वैद्य अमर क्यों न हुए ? साध्यरोग वैद्यों के लिये असाध्य क्यों हो जाते हैं ? रामकृष्णादि अवतार काल के वश क्यों चल बसे ? जन्म के साथ मृत्यु की अभिव्याप्ति पाई जाती

है, अवश्य; मृत्यु की मात्रा जन्म के योग में सम्मिलित है। इस लिये मृत्यु नियति के आधीन है। अकाल मृत्यु कोई वस्तु नहीं। मृत्यु काल ही का नाम है ॥ सृष्टि में एसा कोई नियम नहीं कि बालक और युवक न मरें वयो-वृद्ध ही मरा करें। इस लिये मरने के उपरान्त यह पछतावा कि यदि एसा न करते और एसा करते तो जान बच जाती, भ्रम है ॥ [८]भवितव्य या होनी बलवान है, वह हो कर ही रहती है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रयत्न वृथा है। रोगादि की पीड़ा शमन करने में प्रयत्न का साफल्य है ॥ भाव यह है, कि प्रकृति अदृष्ट के आधार पर चलती है। हमारे परिदृष्ट मन का आयतन अपरिदृष्टमन है जिसकी विधिसे हम अपरिचित हैं और जिस पर हमारा वश भी नहीं। बच्चे या युवकका मरना हमें विधि की निष्ठुरता प्रतीत होती है, किन्तु विधि की गति कोन जान सकता है? कदाचित उस बच्चे या युवकके चरितको विकसित होने के लिये मृत्युलोक की अपेक्षा परलोकमें विराजना अधिक लाभदायक हो! प्रकृति की चेष्टा सर्वथा हितकर है, यह भावना सुसंगत है ॥[६] हमें मरने का शोक यूं है कि हम जो अपरोक्षदृष्टि हैं, तिर्यक्सृष्टि की अपेक्षादृष्टि से यह समझने लगे हैं कि मनुष्य-जीवन ही परम सुख है, मरनेवाला मनुष्य-जीवन के सुख से नितान्त वञ्चित हो जाता है! यदि हमें यह परोक्षदृष्टि प्राप्त हो जाये कि जिस प्रकार मनुष्य-जीवन तिर्यग्जीवन से उत्कृष्ट है, उसी प्रकार परलोक-जीवन

मनुष्य-जीवन की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र है, उसमें सत्ता का अधिक प्रकाश है, अधिक आमोद प्रमोद[६] है; तो एसी दृष्टि प्राप्त होने पर मरना हमें खेल दिखाई देने लगे और परदेशगमनवत मित्र के विछोह का शोक भी न हो! क्योंकि, परलोकगमन मित्र के लिये अधिक सुखावह प्रतीत होने लगे! किन्तु शोक के मिटने पर भी, विछोह परलोकगमन का हो अथवा परदेशगमन का, सर्वथा उद्वेगकारी है ॥ विरहवेदना के अतिरिक्त रोगादि की पीड़ा भी लोक में सब प्राणियों के साथ लगी है। दुःखमय जीवन के मरुस्थल में सुखके हरित-प्रदेश विरलदृष्ट हैं! निस्सन्देह जीवन में दुःख की मात्रा अधिक है ॥ प्रश्न है, क्या दुःख ईश्वर की रचना है? नहीं! यदि ईश्वर ने रचा होता तो वह उसे दूर भी कर देता, क्योंकि वह परमदयालु सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ है। किन्तु दुखी लोकसे प्रत्यक्ष है कि वह ऐसा नहीं करता ॥ शंका है, यदि परमदयालु भगवान लोक का दुख नहीं हर सकता तो वह सर्वशक्तिमान नहीं! यदि सर्वशक्तिमान होने पर भी दुख दूर नहीं करता तो वह दयालु नहीं! यदि सुख के निमित्त दुख देता है तो विना दुख दिये सुख देने में असमर्थ होने से, सर्वज्ञ नहीं! यदि ईश्वर के हां दुखमें भलाई है, तो हमारे भलाईके प्रत्यय और ईश्वरके भलाई के प्रत्ययमें भेद-भाव होने से, हमारे प्रत्ययानुकूल, ईश्वर भला नहीं ठैरता; और भला न होने से उपास्य नहीं रहता[१०]॥ परम संकट है,

कि ईश्वर की सृष्टि में जरा, व्याधि, मरणादि दुःख तथा पाप की रचना कैसे हुई, जिससे सब संसार व्याकुल है[११]! यदि कहो ईश्वर प्रकृतिका स्रष्टा नहीं केवल उसके रूपका निर्माण करता है, तो वह प्रकृति की परसत्ता से मर्यादित है, और उसके गुणों से नियन्त्रित है। वह केवल ब्रह्माण्ड-कुलाल है संपूर्ण देव नहीं! यदि कहो ईश्वर कर्म-फल का देने वाला है तो ईश्वर से निरपेक्षित कर्म ही प्रधान है। ईश्वर ब्रह्माण्डनगर के कोतवाल के समान भय का पात्र है भक्ति का नहीं॥ यदि कहो, ईश्वर न केवल न्यायाधीश है किन्तु पुण्यकर्म का सहायक भी है, तो वह ऐसा सहकारी है जो सर्वशक्तिमान नहीं, क्योंकि वह लोक से पाप तथा दुःख का नाश नहीं कर सकता॥ यदि कहो परमार्थ में दुःखका अभाव है, दुःख व्यवहार में है। परमार्थ सत्ता परब्रह्म है जो सत्य है, व्यवहार मिथ्या है जो ब्रह्मकी माया करके भासता है॥ इस अद्वैत वाद में भी मानना पड़ेगा कि ब्रह्म को एक मायारूपी व्याधि लगी है जिससे संसार रोगी है। रोग कल्पित ही क्यों न हो, ब्रह्म की शक्ति का व्यापार लोक के कल्पित रोग को निवारण करने में असमर्थ है, इसलिये ब्रह्म सर्वशक्तिमान नहीं॥ ब्रह्म अथवा ईश्वर निर्गुण हो वा सगुण, हो वा न हो, उसके द्वारा दुःख के विषमपद का लोक में परिशोधन नहीं होता॥ अस्तु, यदि यह प्रतीति सत्य है, कि ईश्वर चराचर जगतका पिता[१२] है तो वह अपनी सन्तानके

लिये दुःख का मूल नहीं होसकता ॥ तो फिर क्या दुःख का संभव प्रकृति है ? नहीं, यदि प्रकृति दुःख-शील होती अथवा दुःख इसका उद्देश्य होता तो मनुष्य इसे कदापि प्यार न करता, और इसके साथ दुख पाने पर भी, रमण करने की आशा न रखता ॥ क्या मनुष्य अपने लिये आप दुख पैदा करता है ? नहीं, मनुष्य सदा सुख का लोलुप है । दुख भी सुख के निमित्त ही सहन करता है । यह वाद कि दुख सदा अपने पापकर्म[१३] का फल है, असमञ्जस प्रतीत होता है । ऐसा होता तो पुण्यशील महात्महाओं को विशेष दुःख प्राप्त न होता ॥ हरिश्चन्द्र की यातना उनके पापकर्म का फल है या उनकी वीरता और सत्य का प्रज्वलन्त उदाहरण ? सीता तथा राम का कष्ट-मय जीवन किस पाप कर्म का फल था ? देवताओं की सन्तान पाण्डवभ्राता तथा याज्ञसेनी किस अपने पापकर्म का दण्ड भोगने के लिये चिरकाल तक वन वन विचरते रहे और अन्त में उनको पुत्रादि का शोक हुआ ? इन दृष्टान्तों में पूर्वजन्म का सहयोग भी प्राप्त नहीं[१४] । वास्तव में इस जन्मके दुःख की व्याख्या के लिये पूर्वजन्मका उदाहरण सांकर्यदोष है । कारण यह, कि विशेष दुखका अनुभव महात्माओंका परम लक्षण रहा है ॥ दुःख कदाचित प्रेमका रूपान्तर है, सदा पापकर्मका फल नहीं ॥ निस्संदेह पापका फल पाप और पुण्यका पुण्यहै[१५] । यह भावना भी सच होसकती है कि पापका फल दुख है, किन्तु इस वाक्यका यह अर्थ नहीं कि सब दुख

पापकर्म ही का फल है । यह निर्वाचन हेत्वाभास है ।। स्वाध्याय पुण्य-कर्म है, किन्तु परिश्रम के कारण इसमें दुःख भी है ।। भूयोदर्शन से यह ही प्रतीत होता है कि दुःख की पाप से व्यावृत्ति है, कदाचित व्यासज्यवृत्ति हो किन्तु व्याप्यवृत्ति नहीं ।। यह बात सर्वथा निर्मूल है कि मनुष्य अपने ही किये का फल पाता है दूसरेके किये का नहीं[१६]। कारण यह, कि हमारा सब जीवन मिश्रित है । वियुक्त-जीवन आकाश-पुष्पके समान कल्पना-मात्र है । मिश्रित जीवन होने के कारण कृत-कर्म की हानि तथा अकृत की प्राप्ति का दोष उत्पन्न नहीं होता ।। आकाश-क्षेम में समस्त जीवन का एक ही तन्तु ओत-प्रोत है ।। राजधर्म के दोष से समाजधर्म अथवा व्यक्ति-गत धर्म दूषित होता है ।। रामराज्यमें ब्राह्मण को पुत्र-शोक अपने कर्म-फलसे नहीं किन्तु शूद्रमुनिके तपसे प्राप्त होता है! सीताका परित्यागसंकट पौरजनोंकी निर्मर्यादिता है! वियुक्त अथवा संयुक्तरूप कर्म-फल[१७] मानकर भी दुःख की जटिल समस्याका विश्लेषण नहीं होता । महामारी, भूकम्प, तोय-विप्लवादि प्राकृतिक आपत्तियों से निरपराध जीव सहस्रशः मौत के घाट उतरते हैं ! इन सब ईतियों के कारण प्रकृति के परोक्षगर्भ में विलीन हों किन्तु हम उनसे अपरिचित हैं, इसलिये कष्टापन्न हैं ।। इसी प्रकार मरणादि दुःख भी परोक्ष ज्ञान के न होने से प्राप्त है । विज्ञान द्वारा परोक्ष ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य क्रमशः दुःख पर विजय पारहा है । जैसे तिर्यग्जीवन

की अपेक्षा मनुष्य-जीवन सोत्कर्ष है, उसी प्रकार मरने के पश्चात मनुष्य का परलोक-जीवन अधिक रसमय और संतोष-जनक है, इस तत्व का विज्ञान द्वारा बोध होने पर मरणत्रास का दूर होना संभव है॥

अब प्रश्न है, क्या मनुष्यको आधुनिक परिस्थिति में मृत्यु-शोक हृदय का दौर्बल्य है अथवा प्रेम की पराकाष्ठा? हम देखते हैं कि मरने पर शोक उसी का होता है जिसका प्रेम है, जिसका प्रेम नहीं उसका शोक भी नहीं! इसलिये शोक का अभाव प्रेम का अभाव है॥ और प्रेम का अभाव स्वार्थभाव है, इसलिये शोकका अभाव स्वार्थपरता है॥ कहते हैं प्रेम मोह-मात्र है, इसलिये शोक मिथ्या है और त्याज्य है! यह मत हमें असाधु प्रतीत होता है। यदि प्रेम मोह है तो प्रेम का स्वरूप निःस्वार्थ-भाव भी मोह है, स्वार्थ-जीवन ही तथ्य है॥ किन्तु स्वार्थ-जीवन मनुष्यकुलके लिये अस्वाभाविक है उसकी सम्पूर्णसत्ता के लिये संतोषप्रद नहीं। इसलिये प्रेम जो जीवन की सर्वसंपत्ति है मोह नहीं ठहराया जा सकता, उसके बिना मनुष्य जीवन निस्सार है! प्रेम-पात्र के मिटने का शोक अथवा परलोकगत प्रियवर की पवित्र स्मृति हमारे जीवन की अमूल्य संपत्ति है, हम इसे कदापि नहीं खो सकते! काल की क्रूरता देखो कि मार कर भुलाना चाहता है, शरीर का नाश कर प्रत्ययके नाश करनेकी भी चेष्टा करता है! लोग भी भुलानेका प्रयत्न

करते हैं । किन्तु प्रेम यदि मृत्यु पर बलवान है तो शोक का परिशोधन उसके भुलाने में नहीं वरन उसकी संस्कृति में हैं । शोक की भूमिका पर आरूढ हो कर, परलोकगत प्रियवर का ध्यान में संयम करके, उसका सततसाहचार्य प्राप्त कर, उसको अपना अधिक प्रेमास्पद तथा जीवन का निमित्त बनाता हुआ, परलोक-मिलन की आशा से प्रसन्नचित, स्वार्थसुख का परित्याग कर, लोक की निःस्वार्थ सेवा द्वारा जीवन में विचरे। यह प्रमीत की शोक-शान्ति का सदुपाय है न कि उसकी विस्मृति ! इस लिए सशोक होना या शोक में सहानुभूति करना हृदय की दुर्बलता अथवा मूढ़ता नहीं, परम मनुष्यता है ॥ यह अर्थ प्रतिष्ठित महात्माओं के उदाहरणों से सुप्रसिद्ध है। देखो, वसिष्ठमुनि सेपण्डित ज्ञानी अपने पुत्र के मरने पर कैसा विलाप करते हैं। दावानल में जल कर, नदी में डूब कर, भृगुपतन कर के आत्मघात[१६] करना चाहते हैं । कालकृत्रिम नहीं, इस लिये मरते नहीं । पुत्रवधू को गर्भवती जान कर कुल की आशा से चित्त में आश्वासन होता है। पौत्र उत्पन्न होता है। वह तात कह कर वसिष्ठ को पुकारता है। दुखी माता कहती है–हा पुत्र ! तेरा तो पिता पितृवन को सिधार चुका है, तू किसे तात ! तात ! कह कर पुकारता है ? यह करुणावचन सुन कर वसिष्ठपुत्र शोक से क्षुभित होकर प्रमुक्त-कराठ रुदन करते हैं ॥ भरद्वाजमुनि अपने मृतपुत्र का दाह

कर उसी की चिता में अपना शरीर भस्मसात् करते हैं। वसुदेवजी श्रीकृष्ण के मरने पर पुत्रशोक के कारण प्राण त्याग देते हैं। व्यास मुनि अपने पुत्र शुकदेव के मरने पर जब आप मरा चाहते हैं तो देवता उनके पुत्र की छाया दिखा कर उन्हें जीवित रखते हैं। अर्जुन सा वीर योधा अपने युवक पुत्र अभिमन्यु के मरने पर शोक संवेग से प्रताड़ित हो कर संचूर्णहृदय हो जाता है। धृष्टद्युम्न का मरना सुन कर वीर सेनापति द्रुपदाचार्य का हृद्दलन होता है। वह निःसत्व हो जाते हैं और इस प्रकार शत्रु का वार चल जाने से उनका वध होता है॥ धृतराष्ट्र अपनी सन्तान का वध सुन कर भूमि पर लुराठन करता है। बारह बरस तक किसी प्रकार शोकोपशमन न पाकर, अन्त में वन को प्रस्थान करता है। वन में व्यास मुनि की कृपा से प्रमीतपुत्रों की छाया देखकर वह कुछ दिन और जीता है॥ गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरादि वीर ललनाओं का पति पुत्रादि के शोक पर सोरस्ताड विलाप सुन कर वज्रमय हृदय भी विदीर्ण होता है। अपने पुत्र भीष्मके मरने पर पुनीत गङ्गा भी रुदन कर अश्रु धारा बहाती हैं। धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं बन्धुजन के मृत्युशोकसे विह्वल होकर राजपाठ छोड़ने को उद्यत होते हैं। जनक से ब्रह्मज्ञानी बेटी सीता के परित्याग शल्य से पीड़ित होकर सांतपनादि कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत कर आत्मघात की चेष्टा करते हैं। विष्णु भगवानके अवतार श्री रामचन्द्र

पिता के मरने और भाई के मूर्छित होने पर वीरभाव का त्याग कर, प्राकृतजनों की नांई शोकसंतप्त होकर अश्रुधारा बहाते हैं। आप रोते हैं और सब वन को रुलाते हैं॥ इनके पिता दशरथ पुत्र-शोकसे शरीर त्याग करते हैं। उनके पिता अज पत्नीके विरहमें प्रायो-पवेशन करके आत्मघात करते हैं। अनेक साध्वी स्त्रियां पति-वियोग के कारण सती हुई हैं॥ स्वयं भगवान सदाशिव महाभारत में एक पुत्र का मरना देख कर करुणार्द्रचित्त होते हैं और उसे जीवदान देते हैं॥ भगवान 'जिन' महावीर के नेत्रपुट लोकसंताप के कारण साश्रुपूर्ण होते हैं। भगवान बुद्ध के महानिर्वाण पर आनन्द भिक्षु: सब वैराग भूलकर स्वाभाविक प्रेमवश रो पड़ते हैं॥ ईश्वरदूत मोहम्मदसाहब बेटी फ़ातमा के मरने पर आंसू बहाते हैं। लोग कहते हैं आप ख़ुदा के रसूल होकर कैसे रोते हैं! पैग़म्बर साहब साश्रुकराठ उत्तर देते हैं—कि वह मनुष्य नहीं, पशु है, जिसकी मरने पर भी आंख न पसीजे! ईश्वर-पुत्र ईसा मसीह अपने मित्र लैज़ैरस के मरने पर शोकार्त हो वाष्पपूर रुदन करते हैं॥ इन सब महात्माओं के उदाहरणों से ज्ञात होता है कि शोक मानवहृदय की दुर्बलता नहीं, न बुद्धि की मन्दता है, न पाप-कर्म का फल है! यदि ऐसा होता तो द्रुपद अर्जुन से शूरवीर, व्यास जनक वसिष्ठ से ऋषि मुनि और ज्ञानी, श्री रामचन्द्र से पुण्यात्मा दिव्य पुरुष, शोक तथा दुःख के वशीभूत क्यों होते!

और दुःख इन्हें क्यों सताता ! सब महापुरुष शोकाभरण धारण करते हैं। दुःख का शूल सहते हैं ! दुःख तथा शोक सत्पुरुष का अलङ्कार है, सहृदय की सम्पत्ति है। स्वार्थीजीवन ही शोकशून्य है ! वर्बरलोग ही शोक की वेदना से अनभिज्ञ हैं ! निस्सन्देह सब सात्विक प्रकृति मौत पर रोती है, और मौत का निराकरण करने की भरसक चेष्टा करती है ॥

❀ ❀

शोक सभा

(दुखी मनुष्य अपनी चित्तशाला में बैठा हुआ यह चिन्तन कर ही रहा था कि महात्मा लोग उसके दुःख से दुखी होकर, अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिये, और दुःख में आश्वासन दिखाने के लिये, करुणा-भाव से उसकी चित्तशाला में प्रवेश करते हैं, और आदर पाकर चित्त-विष्टर पर विराजमान होते हैं ॥)

आगे आगे वेदमाता सरस्वती आती हैं। वाल्मीकि ऋषि, व्यास मुनि तथा बुद्ध भगवान उनका अनुसरण करते हैं। इनकी भावना से दुखी मनुष्य का चित्त सपदि सुरभित हो जाता है ॥

वेदमाता के संहिता-रूप धम्मिल्ल का परिमल, वाल्मीकि ऋषि के

श्लोक-परिच्छद का सौरभ, व्यासमुनि की इतिहास-माला का सुगन्ध, बुद्ध भगवान के शान्तिप्रद अनुशासन का आमोद, दुखी मनुष्य के विषाद-युत चित्त को अधिवासित कर परमहर्षित करता है ॥ माता सरस्वती पुत्रस्नेह से प्रस्नुतस्तनी होकर, हा जात ! हा पुत्रक ! यह शोकालाप कर, दुखी मनुष्य का परिष्वजन कर उसके मूर्धा का उपाघ्राण करती हैं ॥ वेदमाता के उपाघ्राण से तत्काल ही दुखी मनुष्य का चित्त विशद होता है ॥

वेदमाता अपने आप्त वचन द्वारा यूं आश्वासन दिलाती हैं—प्रिय जात ! विषाद मत करो ! तुम्हारी हानि तुम्हारे ही पितरोंका लाभ है ! तुम्हारा प्रियवर कुछ दिन तुम्हारे पास रहकर तुम्हारे पुरुषाओं से जा मिला है । अब अपनी संगति से उनको प्रसन्न कर रहा है । तुम अप्रसन्न क्यों हो ? वह मानस-लोक में अब भी तुम्हारे पास ही है । उसे सदा अपने पास समझ कर तुम अपना कृत्य निर्वाह करो । उसका ध्यान कर और उसके निमित्त सुकृत कर उसे परलोक में प्रसन्न करते रहो । तुम्हें शोकावस्था में देखकर तुम्हारे परलोक-गत प्रियवर सशोक होते हैं, क्योंकि वह अपने आपका मरा नहीं समझते ! तुम भी उनको मरा न समझो ! एक दिन तुम्हारा उनसे अवश्य मेल होगा ॥ वेदमाता का यह प्रमाणवचन सुनकर दुखी मनुष्य का चित्त सावलम्ब हुआ और उसने अपने मन की शंका विश्रब्ध भाव से प्रकट की—अम्ब ! तुम्हारा वेदवाक्य अशंकनीय

है, किन्तु यह वाद कहां तक सप्रमाणित है कि मनुष्य का इस लोक में पुनर्जन्म होता है? इस वाद से मैं परम हताश हूँ क्योंकि, यदि यह वाद सत्य है तो मेरा प्रियवर से त्रिकाल में भी अब कभी मिलना न होगा, और हम एक दूसरे को कभी न पहचान सकेंगे और न प्यार कर सकेंगे ॥ इस पुनर्जन्म-वाद से मानव-हृदय का अतीव मर्दन होता है। प्रेम का सद्भाव असद् हो जाता है। साहचर्य-जीवन अलीक होकर स्वार्थ-जीवन प्रतिष्ठित होता है ॥ यह सुन कर वेदमाता बोलीं—पुत्र! निस्सन्देह पुनर्जन्मवाद का यह ही परिणाम है कि प्रेम की निर्मूल्य वस्तु मोह प्रतीत हो, समस्त जीवन में निराशा हो, समाज-कर्म शिथिल हो, लोक में यह भ्रान्ति हो कि मनुष्य अपने ही कर्मफल का भोक्ता है, सब को अपनी अपनी ही पड़े, लोक डूबे या तरे, अपना परलोक सिद्ध हो! लोकहित भी स्वार्थहित के निमित्त हो! पुनर्जन्मवाद को सर्वमान्य मानने से ठीक यह ही दशा इस समय आर्यजाति की है। इस वाद के संक्रमण से आर्यजाति वेद के सोत्साह जीवन से पतित होकर निरुत्साह भाव को प्राप्त हुई है। सच जानो, कि मनुष्य की सत्ता कदापि मनुष्य से पृथक नहीं। मनुष्य की सत्ता का आधार ही प्रेम है जो अकेला नहीं रहता, इसलिये प्रेम अवास्तव नहीं। इसलिए पृथक रहकर, शिलावत् निःसङ्गभाव को प्राप्त कर, आत्म-कल्याण तथा संपूर्ण-जीवन की आशा रखना

सर्वथा निर्मूल है। मनुष्य मनुष्य का मधु है, यह प्रेम-रहस्य मधु-विद्या[२०] में प्रबोधित कर दिया गया है। इसलिए प्रकृति की हितकर प्रवृत्ति में, प्रेम का सदाके वास्ते दुराघात नहीं हो सकता। मैं वाग् देवता हूँ, यह मेरा आप्त वाक्य है, कि सदोष शरीर छोड़कर सुवर्चस्तनु के साथ, पुरुष परमव्योम में अपने घर पितरों के पास निवास करता है, जहां सब प्रियवर मिलकर सुख का अनुभव करते हैं और अमरजीवन को प्राप्त होते हैं ॥[२१] मरणमर्यादा केवल पंचभूत के स्थूलाकार की है, स्थूलशरीर से विसृष्ट होने पर पुरुष-जीवन अमर है। इसलिये मरना जीवन की पूर्णाहुति नहीं, किन्तु दिव्यजीवन का द्वार है। विधि की इस आकृति में पुरुषजीवन की समृद्धि तथा प्रेम की संतृप्ति है[२२]। इस लिये शोक में विषाद न करके प्रेम का अधिक अनुभव करो और पुनर्मिलन की आशा से सजीव हो! यह विश्वस्तवचन कहकर वेदमाता ने अपने करपल्लव से दुखी मनुष्य का साश्रुमुख प्रक्षालन किया और वाल्मीकि ऋषि की ओर अङ्गुलि निर्देश से संकेत किया कि सान्त्वभाषण करें ॥

वाल्मीकि ऋषि बोले—देवी सरस्वतीको मेरा नमस्कार है, जिनकी प्रतिभाशक्ति से प्रबुद्ध होकर मैंने रामचरित[२३] के यश का गान किया है ॥ बेटा! तुम्हारा चित्त शान्त करने को रामचरित का एक तत्व निरूपण करता हूँ॥ सुनो, सीता और रामकी कथा क्या है! पीड़ा, क्लेश,

दुःख, व्यथा, संताप, वेदना, कृच्छ्रका भण्डार है ! संसारके इतिहास में ऐसा कोई जायापती दृष्टिगोचर नहीं होता जिसका गृहस्थजीवन सीता और रामके गृहस्थ जीवनके तुल्य कष्टमय हो ! यह सुप्रसिद्ध इतिहास तुमको विदित है, इसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं ! देखो, सीता संसारिणी स्त्री नहीं, न राम संसारी पुरुष हैं। दोनों का पापरहित तथा पुण्यशील लोकोत्तर जीवन है ! पर दोनों का दुःख भी लोकोत्तर है ! पुण्य और दुःख का संगम इन दो दिव्य-चरितों में अनुपम रूप से पाया जाता है। दुःख सदा पाप-कर्म का फल है, यह वाद सीता और राम के पुण्य-चरित से असिद्ध है। दोनों स्वयं निरपराध होकर संसार के अपराध से सदा पीड़ित हैं। इस प्रकार सदा व्यथित-हृदय होने पर भी दोनों सदा कर्तव्य-परायण हैं और सहनशील हैं। दोनों का परस्पर निरतिशय प्रेम है, तथापि इनका दाम्पत्य जीवन वियोगान्त है ! हा ! ऐसा लोकोत्तर साधुजीवन दुःखान्त हो, यह क्या विधि की वामता है ! मानो, विधि की ऐसी ही गति है कि इस लोक में साधुजीवन दुःखशील हो और परलोक में सुखावह ! इसलिये तुम अपने प्रियवर के इस लोक की संपत्ति से वञ्चित होने पर, निराश मत हो। परलोक की अनल्प संपत्ति की अपेक्षा इस लोक की हानि तुच्छ है ! देखो, राम वैदेही ने परलोक-हित के लिये जीवन के समस्त सुखों का स्वयं त्याग कर अनन्त दुःख भोगा। इसलिये हमें भी विपद्

पड़ने पर परिदेवना न करनी चाहिये। यह समझना चाहिये, कि जिस प्रकार पुरुषोत्तम रामचन्द्र, परलोक में श्रद्धा रखकर, समस्त जीवन दुख भोगते रहे, उसी प्रकार हमें भी दुख पड़ने पर धीरज धरना उचित है॥ सीता और राम का ज्वलन्त उदाहरण निष्कारण दुख सहन करने में हमारा परम सहायक है। देखो राम पर क्या क्या विपद् पड़ी—घर से निकासा, प्रासाद से बनवास, पितृमरण, सीताहरण, भाई को शक्ति लगना, स्त्री के अपवाद की लज्जा और उसका निष्कारण परित्याग, प्रिया का शोक, और पितृकुल के क्षय की संभावना—इस प्रकार दुःख परम्परा ने राम के जीव-कुसुम की मानो ग्लपित कर दिया था॥ सीता ने लोकहित के लिये पृथिवी में समाकर अपने जीवन का बलिदान किया, और राम ने मृत-तुल्य हो लोक-हितके लिए जीवित रहकर, इससे भी अधिक चमत्कार किया! जीवन मरण का कौनसा दुःख है जो राम पर न पड़ा हो और जो राम ने छाती पर सिल रख कर सहन न किया हो! राम का कष्टमय साधु-जीवन आर्यजीवन का परम आदर्श है, इसका अनुकरण करना आर्य पुरुषों का धर्म है। तुम भी रामवत् परलोक में श्रद्धा रख कर इस लोक में दुख पर विजय प्राप्त करो, और मृत्यु का वीरता से सामना करो! प्रेम की मृत्यु पर सदा विजय है! राम का सीता से इस लोक में वियोग होकर परलोक में मेल हुआ॥ तुम्हें भी परलोक में अपने

प्रियवर के साथ नित्य-जीवन का सुख अवश्य प्राप्त होगा ॥ इस प्रकार सान्त्वना करके वाल्मीकि ऋषिने सुतस्नेहवश अपने हितकर पाणि से दुखी मनुष्यका परामर्श कर व्यास मुनि की ओर देखा ॥

पुण्यदेहधारी व्यासमुनि बोले — आदिकवि वाल्मीकि ऋषि को नमस्कार है जिन्होंने लोक में रामचरित का गान करके वीररस का संचार किया, और अधीर जगत को सधैर्य बनाया ॥ तात ! सुनो, अपने प्रियवर की मृत्यु पर जब लोग दुखी होते हैं और दुखवश उनका चित किसी प्रकार नहीं मानता, तो ऐसा लोकस्वभाव है कि एक को देखकर एक को आश्वासन प्राप्त होता है, इसलिये ऐसे समय पर स्वर्गीय लोगोंका इतिहास[२४] सुनाते हैं। जिनके सुनने से यह आश्वासन होता है, कि काल ने हम को ही नहीं ग्रसा, यह जगत् का भक्षक है ! नरनारी, बालक युवा, शत्रुमित्र सब काल के ग्रास हैं—कोई आज कोई कल—अन्तर केवल आगे पीछे का है ! देखा गया है कि मरते समय प्रायः मनुष्य की प्रकृति पलट जाती है। मृत्यु का सामना करने के लिये जीवनसंभारको वह निःस्पृहतासे त्याग देती है और मृत्युके चक्षूराग से अतीव मृदुल हो जाती है। इस मृदुभावका करुणात्मक स्मरण करके विरह में बन्धुजन क्षुभित होते हैं। गतपुरुष के जीवनकी सब मीठी मीठी बातें याद आती हैं—कैसा सुन्दर शरीर, कैसा फूल सा वदन, कैसे कुञ्चित केश, कैसे नील नेत्र, कैसी स्मितपूर्वाभि-

भाषिता; कैसा मधुरालाप, कैसी आज्ञाकारिता, कैसी सहन-शीलता, कैसी सद्वृत्ति, कैसा आत्मत्याग, कैसा प्रेम-स्वभाव, इत्यादि श्लक्ष्ण भावों का स्मरण करके सुहृज्जन वियोग में आलाप विलाप करते हैं ! इस प्रकार मरने पर जो हाहाकार मचता है, जो हृदय-कपाट का उत्पाटन होता है; जो मनोवृत्ति की वियोग में क्लेशावस्था होती है, जो क्षमायाचन और क्षमापन के अन्तिम दृश्य होते हैं उन सब का इतिहास में हृदयस्पृश् तथा विचित्र वर्णन सुनने से, जगत् के समान-दुःख का अनुभव होने पर, अपने दुःख की विशेषता लीन होने से, अपने से अधिक दुखियों का मर्मस्पृश् वृत्तान्त सुन कर, मृत्यु की अनिवार्यता का बोध होकर, वियोगि-जनों के चित्त को आश्वासन होता है । यह सान्त्वनात्मक इतिहास मेरी भारतकथा में विशेषरूप से उपलब्ध हैं । अनेक गीताएं इस कथाके अन्तर्गत हैं । इनका परिशीलन कर मृत्युतत्त्वको समझो, कि मृत्यु है ही नहीं, कोई मरता नहीं, सब परलोक को जाते हैं ! इनमें मृत्युत्रास को दूर करने के लिए अनेक उपपत्तियों का वर्णन है, अनेक दृष्टान्तों का उल्लेख है, तथा अनेक उदाहरणों का निरूपण है ॥ मैंने स्वयं युधिष्ठिर को मृत्युभय से छुड़ाने के लिये उपदेश किया है । भारत कथा क्या है, मानो धर्मजीवन के उपलक्ष्य में मृत्युगाथा है ! देखो, महारथी मरुत्त, सुहोत्र, शिवि, भगीरथ, दिलीप, मान्धाता, ययाति, अम्बरीष, गय, वेन, कौरव

पाण्डवादि जैसे बलवान् प्रतापी राजा, इन्द्रलोक तक जीतकर, सब काल के वश चल बसे ! देखो, कृष्णभगवान जिसके मामूं हों, वीर अर्जुन जिसका पिता हो, धर्मराज युधिष्ठिर जिसके संरक्षक हों, उन सबकी साक्षिमें राजयुवक अभिमन्यु का वध हो, सब की ऐसी विपरीत मत हो, यह काल का आधिपत्य है ! स्वयं कृष्णभगवान् व्याध के तीर से काल वश हों, यह काल का साम्राज्य है ! काल हो या स्वभाव, विधि हो या यदृच्छा, दैव हो या भवितव्य, कर्मफल हो या ईश्वरेच्छा—सर्वथा मनुष्य मृत्यु के अधीन है ! मौत भूलसे नहीं आती, न मनुष्य भूल से जीता है ॥ पंचभूतात्मक सृष्टि की यह ध्रुवनीति है ! पंचभूत-प्रकृति की वेदि पर मनुष्य-रूप पशु का बलिदान अनिवार्य है ! जरठश्रोत्रिय के समान यह प्रकृति भी मूढ़ है ! मनुष्य की विवशता देखो कि यह अपनी जान का भी आप मालिक नहीं ! न जाने किस पल पक्षी वृक्ष पर से उड़जाये और जीवन की सब आकांक्षाओं पर पानी फिर जाय ! ऐसी अस्थिर अवस्था में प्राणों की स्थिरता की आकांक्षा करना सर्वथा भूल है ! काल के अबोध से तुम अपने आपको स्थिर मान कर दूसरे के चल बसने का शोक करते हो। इतिहास के नेत्र से देखो तुम भी वर्तमान न होकर अतीत हो ! कालकी दृष्टिमें सब मरे पड़े हैं ! इसलिए, बेटा ! मैं हाथ उठा उठा कर पुकारता हूँ। इस दुःखमय जगत में धर्म का कष्टमय-जीवन

व्यतीत करो, उससे इस लोक तथा परलोक में सुख है। यहलोक कर्मभूमि है, भोगभूमि नहीं ॥ जिस प्रकार दुखी पाण्डव परलोक में परस्पर सुखपूर्वक मिल कर दिव्य जीवन को प्राप्त हुए, उसी प्रकार तुम्हारा भी प्रियवर से परलोक में अवश्य मेल होगा, यह सृष्टिनियम है। विषाद मत करो, मृत्यु द्वारा परलोक में प्रियवर के सतत-साहचर्य का सुख प्राप्त है ॥ यहां का टूटा हुआ प्रेम-तन्तु वहां अवश्य जुडता है, क्योंकि ब्रह्माण्ड का हृदय प्रेम है!

इस प्रकार मनोहर वाणी से आश्वासन दिलाकर व्यासमुनि ने दुखी मनुष्य का कातर हृदय अपने करकमल से स्पर्श कर कवचित किया और सप्रेम हाथ पकड़ कर भगवान बुद्ध के सामने उसे जा खड़ा किया ॥ भगवान बुद्ध के शान्त-स्वरूप को देख कर, उनके मधुरावलोकन से दुखी मनुष्य के तरल हृदय में विश्वास उत्पन्न होकर नवजीवन का संचार हुआ ॥ भगवान बुद्ध करमुद्रा से आश्वासन दिलाकर बोले—आओ, मैं तुम्हारा दुख हरूं ॥ तुम पहले यह दृष्टान्त सुनो। मेरे पास एक बार कृशा गोतमी नाम की एक स्त्री रोती हुई आई और कहने लगी—भगव, मेरा पुत्र मर गया है, उसको तुम जिलाओ, और मेरा शोक हरो! इस स्त्री को शोक से परम विह्वल देख कर मैंने एक उपाय चिन्तन किया और उससे कहा—गोतमी, तुम्हारा लड़का जी सकता है यदि तुम

जाकर थोड़े से तिल उस घर से मांग लाओ जिस घर में मृत्यु ने कदापि प्रवेश न किया हो ! यह सुन कर गोतमी वेग से दौड़ी और घर घर तिल मांगती फिरी, किन्तु उसे ऐसा कोई घर न मिला जिस घर में मौत न आई हो। तब वह हार कर मेरे पास लौटी और बोली, "भगव ! मुझे अब ज्ञात हुआ कि मृत्यु अनिवार्य है, इससे कोई घर खाली नहीं। सब जगत् काल का कलेवर है ! मैं अभागिनी पुत्र का रुदन करती हूँ, किन्तु मेरा कोई रुदन करने वाला भी नहीं ! इसलिये आप मुझे अपनी शरण लीजिये। पुत्र की पुण्यस्मृति में मैं आत्मजीवन त्याग कर आज से आपकी उपासिका हूँ." तुम्हे भी इस दृष्टान्त से संसार की अनित्यता और अनित्यताके कारण उसके दुःख और अनातम भाव का बोध होना चाहिये। चित्त को सदा प्रबुद्ध और शान्त रखने के लिये जीवनके इस स्वभावरूप त्रिक का मनन करना चाहिये—अनित्य-दुःख-अनात्म—यह स्मरणत्रय है ! वेदमाताके वचन से तुम्हें खोए हुए प्रेम के पाने की आशा होकर परलोक में श्रद्धा उत्पन्न हुई और तुम्हारा चित्त आल्हादित हुआ। बाल्मीकि ऋषि के गान किये हुए राम चरित के उदाहरण से, इस लोक में दुख भोगने और पर-निमित्त दुख का सहर्ष आवाहन करने की शक्ति उत्पन्न हुई। व्यास मुनि की भारतकथा से धर्म-जीवन में आस्था दृढ़ हुई॥ मेरा भी तुम्हें यही अनुशासन है, कि तुम प्रेम को न भूलकर उसके पूर्ण

रूप को प्राप्त करो ॥ तुम्हारे प्रेम पर बलात्कार आघात होने से तुम्हें दुख प्राप्त हुआ है। इस दुख की निवृत्ति का सदुपाय, पशु के समान प्रेम को भुला देने में नहीं, किन्तु दुःख का विवेचन करने में है ॥ तुम को विदित है, जितनी विवेचना दुख की मैंने की है शायद ही किसी ने की हो! जरा व्याधि मरणादि दुःख से व्यथित होकर मैंने अपना राज प्रासाद छोड़ा और काषाय-कन्था ग्रहण की! एक दुःखतत्वके विमर्श में मैंने अपना सारा बल लगाया और बुद्धि की आयोजना की। मुझे बोधि प्राप्त हुई कि जीने की तृष्णा दुःखका मूल है, इसका त्याग सुखपर है। दुःख, दुःख का निदान, उसकी निवृत्ति और निवृत्तिका उपाय यह आर्यसत्य चतुष्टय, मनोविज्ञान द्वारा, मैंने सिद्ध किया। यह सिद्धि प्राप्त करके मेरी ध्रुवचेष्टा हुई कि संसारमात्र का दुःख दूर हो। मैंने अपना मत लोक में प्रकाशित किया जिससे अगणित प्राणियों का कल्याण हुआ। मेरे पास बहुत सी बीमारियों के योग नहीं, मैं केवल एक रोग का भिषक् हूँ। यह अभिव्यापी रोग दुःख रोग है, जिससे सब संसार पीड़ित है, और जिसके निवारण करने होके लिये मैं संसार में आया हूँ। मेरे बोधिवृक्ष पर शोक-शान्ति नामक फल लगा है जिसका प्रसिद्ध नाम निर्वाण है ॥ मैंने बताया कि जीने की चाहना दुःख है। जब तक तुम्हें अपने जीने की चाहना बनी है तब तक ही मरने का दुख है ॥ सब की यही चाहना है कि हम

सदा जीते रहें, और जिन्हें हम प्यार करते हैं वह भी नित्य बने रहें। किन्तु मनुष्य-जीवन स्वभाव से अनित्य है। अनित्य में नित्य की चाहना असंविधान है। इस असंविधान के कारण सब दुखी हैं॥ ज्ञात हुआ कि दुःख का कारण अनित्य-जीवन में नित्य-जीवन की चाहना है, इसलिये जीने की चाहना का त्याग, संविधान के कारण, दुख का त्याग है॥ जीने की चाहना जिस कारण से पैदा होती है उसे जाना जाय, तब उस कारण को दूर करके जीने की चाहना मिट सकती है और निर्वृत्ति प्राप्त हो सकती है॥ जीने की चाहना जिसे अभिनिवेश[२५] अथवा उपादान भी कहते हैं, उसका कारण तृष्णा है, और तृष्णा का कारण वेदना अर्थात् विषय-भोग है। शब्दादि विषयों में सुख मानकर मनुष्य जीने की चाहना करता है। विषयसुख का भोग करने से जीने की चाहना दृढ़ होती है, और विषयका मनसे त्याग करने पर, जीने की चाहना मिट जाती है। और जीने की चाहना मिटने पर संविधानता के कारण मृत्यु का शोक दूर होता है और निर्वृत्ति प्राप्त होती है॥ यह सम्यग्दृष्टि दुःख की निवृत्ति का उपाय है। सत्कायदृष्टि का त्याग सम्यग् दृष्टि है। सत्कायदृष्टि मूलसंयोजन होने से दुःखरूप बन्धन है। इसकी निवृत्ति निर्वाण है॥ अविद्यादि प्रतीत्यसमुत्पाद के बोध से, अकरणीयकर्मों का त्याग कर, अष्टाङ्ग-धर्ममार्ग को स्वीकार कर, पञ्चशीलादि का ग्रहण कर, पंचभावना

द्वारा, मनुष्य पारमिताप्रज्ञाको प्राप्त करता है, जिससे लोक निष्क्लेश होता है और उसका उत्तम मङ्गल होता है ।। मृत्यु का रूप जानने की प्रबल उत्सुकता से भी मृत्यु का भय दूर होता है, यह बात साधारण मनुष्यों को भी सिद्ध है ।। किन्तु जिसने जीवनाभिनिवेश को मिटाकर अपना आपा ही न रखा हो जिस पर मृत्यु का व्यापार होता है, उसे मृत्यु का भय कैसे व्याप सकता है !

भगवान बुद्ध का यह ज्ञानोत्कर्ष भाषण सुनकर दुखी मनुष्य का चित सचेत हुआ और उसने निःशङ्कभाव से यह शंका प्रकट की—भगवन् ! जीवन के निमित्त ही दुःख की निवृत्ति चाहते हैं। जीवन खोकर दुख मिटा तो उससे जीवन का क्या लाभ है ! शरीर की रक्षा के लिए रोग कीनिवृत्ति चाहते हैं, शरीर पात होने पर रोग गया तो उस का क्या फल है ! बुद्ध भगवान यह शंका सुनकर अधर मुस्कान के साथ बोले—सुनो, जीवन का खोना ही जीवन की प्राप्ति है। अपने जीवन के निषेध में और परजीवन की प्रतिष्ठा में प्रेम के सुख का अनुभव है। अपना जीवन, पर जीवन में देखने से, मनुष्य अपना जीवन खोकर ही, प्रेमरूप परमजीवन पा सकता है ।। अपनी सत्ता के प्रतिष्ठित करने में परसत्ता का आघात है, और परापर भेद के कारण राग द्वेष की प्रवृत्ति है। जितनी दूरमें तुम हो उतनी दूर में तुम्हारा प्रियवर नहीं। अपना जीवन खोने ही से परापर भेद मिटने पर, अभेद-जीवन प्राप्त

होकर, दुख दूर होता है ॥

यह गम्भीर वचन सुनकर दुखी मनुष्य बोला—भगवन् ! क्या दुख दूर करने के लिये जीवन खोना भीरुता नहीं ? वीरमनुष्य दुख से घबराते नहीं उसका सामना करते हैं ! भगवान् बुद्ध बोले—जीवन खोना अपना दु:ख दूर करने के लिये नहीं । अपना दु:ख मानकर करुणावश दूसरोंका दुख दूर करनेके लिये है ॥ जीवन खोने में निज दुख निमित्त-मात्र है, परदुख दूर करना उद्देश्य है, इसलिये जीवन खोना कायरता नहीं परम पराक्रम है ॥ जितने अंश में तुम्हारी सत्ता हठकारी है उतने अंश में परसत्ता का अपवाद होने से उसे दुःख है ॥ तुम अपने आपे को लिये हुए दूसरों के दु:ख का कारण हो । इस लिए अपनी सत्ता का त्याग किये बिना पराया दुख हरना दुष्प्राप्य है ॥ पराया दुख हरने की चेष्टा में अपना दुख आप अनायास हर लिया जाता है और सुख रूप बन जाता है, यह दूसरी बात है ! तुम्हारा दुःख तुम्हारी अपनी सत्ता की हठ से है । इस हठ द्वारा परसत्ता का तिरस्कार होने से तुम्हारी प्रेमरूप सत्ता का आघात है, जिस आघात का अनुभव क्लेश अथवा दुःख है ॥ इसलिये भोगादि विलाससे मुंह मोड़कर, अथवा अपने जीवन की हठ तोड़कर, प्रत्याहार से जीवन की तृषा को बुझाकर, तुम परसत्ता में प्रवेश कर, निर्वाणपद को प्राप्त करो ॥ यह निर्वाण-पद सत्ता का अभाव नहीं, जीवन की तृष्णा का अभाव है । पर-

जीवन में आत्मजीवन पानेसे परमसत्ता की प्राप्ति है। तुम अपना जीवन खोने में जीवन नहीं खोते हो, किन्तु संकीर्ण जीवन से निकल कर उदार जीवन को प्राप्त करते हो जिसमें तुम्हारी परमसत्ता की संतृप्ति है, और निर्वाण है ॥

यह गूढ़ वचन सुनकर दुखी मनुष्य बोला—यदि इस प्रकार जीवन खोनेका उपाय करके निर्वाणपदकी प्राप्ति फिर भी अपने ही निमित्त है तो यह भी एक स्वार्थप्रवृति है। इससे हमारी प्रेमवृत्तिका सन्तोष नहीं होता। अपने प्रियवरको छोड़कर अपने लिये निर्वाणकी चेष्टा करना प्रेम का आघात है! बुद्ध भगवान बोले—मैं बता चुका हूँ कि निर्वाण की प्राप्ति अपने सुख के लिये नहीं किन्तु परपीड़ा दूर करने के लिये है। यह बात निर्वाण प्राप्ति के उपायसे ही सिद्ध है—जीवनाभिनिवेश का मिटाना ही निर्वाण प्राप्ति का उपाय है ॥ परपीड़ा के हरने में निजपीड़ा स्वयम् निष्पीड़ होजाय यह प्रेमरूप सद्-जीवन का स्वभाव है—अनायास है, इसमें मनुष्यका स्वार्थ नहीं! जैसे मनुष्य, लोक का रोग हरने के लिये भिषक् बननेकी कष्ट साधना करता है और उसमें अपना दुःख भूल जाता है, उसीप्रकार लोकहितके लिये निर्वाणपदकी साधना है ॥ इसलिये निर्वाणसिद्धि स्वार्थपरता नहीं, निःस्वार्थ है ॥ यह प्रेमका प्राचुर्य है, आघात नहीं ॥ बोधि प्राप्त करके मैं सदा लोक की सेवा में लगा रहा। अवलोकितेश्वरादि बोधिसत्व निर्वाणपद प्राप्त करने पर भी, जगत की मित्रता के कारण, निर्वाण

सुख में प्रवेश नहीं करते, और अपनी निर्वाणसिद्धि द्वारा सदा लोक का हित करने में तत्पर हैं ।। निर्वाण निजजीवन की तृष्णा का बहिष्कार है, और प्रेमरूप परिपूर्णजीवन का स्वीकार है ।। तुम्हारा अपना दुख जीवन की लालसा का फल है । यदि तुमने अपनी सत्ता को अपने प्रियवर की सत्ता के आगे मिटा दिया होता और उसकी सत्ता को प्रतिष्ठित किया होता तो तुम्हें उसकी मृत्यु का शोक नहीं व्यापता, क्योंकि एक तो प्रेमाघात का दुःख जो तुम्हारी सत्ता के हठ का फल है न होता, दूसरे तुम उसके मरने से पहले ही मर चुके होते, उसके मरने और तुम्हारे जीवन में कोई भेद-भाव न रहता ।। यह भेदभाव ही दुख का कारण है ।। तुम्हें भासता है कि तुम्हारा प्रियवर निर्जीव है और तुम सजीव हो, इसी विषमता का दुःख है । इस दुख दूर करने का यह ही सहज उपाय है कि तुम भी निर्जीव हो जाओ, और प्रेमजीवन की पूर्ति के लिये निर्जीव होकर सजीव रहो ।। इस प्रकार प्रियवर को निमित्त बनाकर, निजसुख का त्याग कर, सदा लोक का दुख दूर करने में तत्पर रहो ।।

यह दिव्य-वचन सुन कर दुखी मनुष्य बोला—भगवन् ! आपका वचन सत्य है, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ।। पर इसका क्या कारण है कि आप ईश्वरके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहते । मनुष्य स्वभावतः यह चाहता है कि वह अपने

से ऊँचे किसी देवता को पूजे जो उसके जीवन का आधार हो। ईश्वर के न मानने से जीवन आदर्शयुत न रह कर निस्तेज होकर साधारण रूप रह जाता है, और जीवन में कोई स्थिर अवलम्ब न पाकर मनुष्य निराश होजाता है। बुद्ध भगवान् बोले—सुनो, आत्मवाद में ईश्वर का अवकाश है॥ पहले तुम अपनी सत्ता को मानते हो फिर उसे दृढ़ करने के लिये ईश्वर की सत्ता को ढूंढते हो, और उसमें विश्वास कर सावलम्ब होते हो। मेरा शुरू से अनात्मवाद है। मैं कहता हूँ तुम अपनी सत्ता का निषेध करो। जब आत्म-सत्ता ही न रही तो बताओ उसे दृढ़ करने के लिये ईश्वर-सत्ता का अवकाश कहां प्राप्त है! निस्सन्देह, मनुष्य स्वभावतः ऊपरकी ओर देखता है और अपने लिये अच्छा ही अच्छा चाहता है। अपने से किसी ऊंचे पदको अपने जीवन का सहारा बनाता है और उसके आगे अपना सिर झुकाता है॥ मैं इस कल्पना का योग न करके जीवन का अवलम्ब जीवनमें से ही ढूंढ कर निकालता हूँ और यह उपदेश करता हूँ कि निशारूप निजजीवन की अन्धलालसा का त्याग करो, इसी से संपूर्ण जीवनका सूर्योदय प्राप्त होगा! मनुष्यका यह त्यागरूप जीवन प्रेम-स्वभाव के अनुकूल होने से, परम सुखकर है। इस दिव्य-जीवन की प्रभा से जीवनान्धकार दूर होकर लोक में प्रकाश होता है। जीवन-ज्वर के नाश होने से जब मनुष्य स्वस्थचित्त होता है तो

जरा व्याधि मरणादि दुःख का आधार मिट जाने से इनके आने पर भी चित्त में बाधा नहीं होती और प्रेम का स्वभाव भी बना रहता है। परपीडा के दूर करने की स्थिरचेष्टा मनुष्य-जीवन का अवलम्ब हो जाती है। परपीडा की निवृत्ति में चित्त प्रसन्न रह कर सब विषाद दूर होता है और परपीड़ा दूर करने के उद्यम में मनुष्य अपनी पीड़ा भूल जाता है॥ जब निस्पृह भाव से अपने आप ही को भुला देता है तो आपे के संरक्षक की चिन्ता का अवकाश भी प्राप्त नहीं होता। जब अपना आपा ही न रहा तो उसका रखवाली कैसा ? और किस दुख की रक्षा ? वह तो औरों का दुख बटोरता है! तुम्हारा मन भी जब दूसरे का दुख देख कर इसी तरह व्याकुल होने लगे जिस तरह मेरा तो तुम्हें भी अपने सब सुख काटने को दौड़ने लगें। जब सुख से निस्पृह हो गए तो बताओ सुख के दाता ईश्वर के चिन्तन का अवसर कहां प्राप्त है ? सुख दुख से निस्पृह होने पर यह बुद्धि प्राप्त नहीं होती कि सुख दुख का दाता जो ईश्वर है उसका भजन करो॥ शत्रु का तीर लगने पर पहले तीर निकालने की चेष्टा की जाती है इस बात के अन्वेषण करने का तत्काल अवसर नहीं कि तीर किसने फेंका। इसी प्रकार परपीडा हरण करने के सतत उद्यम में निमग्न करुणावान् पुरुष के पास ईश्वर के वाद विवाद के लिए एक क्षण भी खाली नहीं। इसलिए मेरे मत में पुरुष के जीवन का

अवलम्ब ईश्वर के स्थान में पुरुष ही है। उस का धर्म ईश्वरोपासना के स्थान में पुरुष मात्र की सेवा करना है। उसकी मुक्ति निज जीवन से मुक्त होने में है नकि कैवल्य प्राप्त करने में। उसकी संतुष्टि बैठकर भजन करने में नहीं किन्तु दूर दूर फिर कर प्राणियों का दुख दूर करने में है। एक प्राणी का भी दुख दूर करने से जो मेरा चित्त प्रसन्न होता है वह लाख पूजा पाठ करने में नहीं। मेरे इस मत में लोक का अधिक हित है, तुम्हें भी उचित है कि तुम आत्मजीवन का परित्याग कर लोक के दुख में दुखी होकर सुख का अनुभव करो। तुमने सुना होगा, [२६]मार्कण्डेय पुराण में विपश्चित के इतिहास का वर्णन है। विपश्चित के सन्निधिमात्रसे नरकवासियों की पीड़ा दूर होती थी। यह देखकर उसने अपना स्वर्ग स्थान छोड़ दिया और अपना सब सुख त्याग कर दिन रात नरको जीवों की पीड़ा हरने में सहर्ष लगा रहा। इसी प्रकार तुम भी निज जीवन में सुख की इच्छा न रखते हुए परपीडा के हरने में लगे रहो, इससे मृत्यु-शोक की शान्ति होगी और प्रियवर का अधिक सामीप्य प्राप्त होगा। शोक-शान्ति इस लिए नहीं कि तुम अपने प्रमीत प्रियवर को भूलकर जीवन में सुख भोगो। यह इसलिए है कि तुम उसकी समवस्था को प्राप्त कर उसका सतत सायुज्य प्राप्त करो और उसके निमित्त भाव से लोक का उपकार करो। शोकावस्था में जीवन की चाहना

बनी रहने से तुम्हें प्रियवर की समवस्था प्राप्त नहीं हो सकती जो तुम्हारी अभिलाषा है। जीवन की चाहना मिटा देने से उपरत भाव को प्राप्त होकर शोक-शान्ति द्वारा प्रियवर की समवस्था प्राप्त होगी, जो तुम्हें अभीष्ट है, और सद्रूप है॥

जो लोग सुख में हैं वह शंका करते हैं कि मैं जीवन का दुःख वाद प्रचार करता हूँ। यह उनकी भूल है। उन्हें अभी जीवन-मरीचिका का मरुस्थल दिखाई नहीं दिया है। अपने क्षणिक सुख में वह इतना मग्न हैं कि उन्हें पराया दुख दिखाई नहीं देता! मैं कह चुका हूँ कि जब पराया दुख अपना दुख बन जाता है तो दयालु हृदय को अपना सुख भी दुख रूप हो जाता है। मैं संसार के दुःख बाहुल्य में अपना दुख मान कर, दुःखतत्व का अधिक विवेचन करता हूँ। किन्तु दुख मेरी कल्पना का दोष नहीं, वस्तु-तन्त्र है॥ मेरा निराशावाद नहीं, क्योंकि मैं संसार के दुख दूर करने का मार्ग प्रदर्शित करता हूँ॥ तुम्हें भी मेरा यह अनुशासन है कि तुम अपने सुख की आशा छोड़कर दूसरों का दुख दूर करने के यत्न में सुख का अनुभव करो। इस प्रकार निजजीवन से निरपेक्ष होकर तुम्हारा चित्त शान्त होगा और जीवनाभिनिवेश के दूर होने पर तुम अपने प्रियवर के अधिक समीप होगे और लोक का भी उपकार होगा॥ यह कहकर भगवान बुद्ध ने दुखी मनुष्य का हाथ पकड़ा॥ भगवान के करकमल के स्पर्श से तथा

उनके दिव्यभाषण के प्रभाव से दुखी मनुष्य का चित्त शान्त हुआ और बोधि प्राप्त हुई। जीवनोपादान के त्यागप्रत्यय की छटा से वह देदीप्यमान हो गया। और नवजीवन के संचार से उपरतभाव को प्राप्त होकर, अपने प्रियवर के समानभाव तथा सामीप्य का अनुभव करने लगा॥ प्रेम की मृत्यु पर विजय पाने से उसका मन निर्भीक हो हर्षोल्लास में नृत्य करने लगा, और यह आलाप कर वह भगवान बुद्ध के शरणागत हुआ—बुद्धं शरणं गच्छामि॥

❀ ❀ ❀

अनित्य—दुःख—अनात्म

❀ ❀ ❀

निर्देशस्थल तथा टिप्पणियां

१. (एक में अनेक और अनेक में एकता का अनुभव)—ब्रह्म का आदिसंकल्प–बृहदारण्यक १.४.३.–तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत् ॥ १.४.१७—तस्मादपि एतर्हि एकाकी कामयते जाया मे स्यात् ॥ छान्दोग्य ६.२.३.–तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति ॥ इसलिये अकेली आत्मा का आनन्द मोक्ष नहीं, मोक्ष संगत रूप ऐक्य है ॥)

२. (सब अङ्गों सहित सशरीर पुरुष का परलोक गमन)— तैत्तिरीय सं०५.३.५.२—सर्वतनुः सङ्गः ॥ अथर्ववेद ५.६.११– त्वा प्रविशामि···सर्वतनूः सह यन्मेस्ति तेन ॥ १८.४.६४— साङ्गाःस्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥ श. प. ब्रा०—५.६.१.१।

११.१.८.६ । १२.८.३.३१ ॥ बृहदारण्यक ४.४.२—तमुत्क्रामन्तं प्राणोनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वेप्राणा अनूतुक्रामन्ति(शांकर भाष्य ब्र. सू. २,४,६,१७) श्वेताश्व, ५,१२; सांख्यकारिका ४०-४२. सांख्यसूत्र ६.६.१—लिङ्गशरीरनिमित्तक इति सनन्दाचार्यः ॥ योगवासिष्ठ—आतिवाहिक शरीर ॥

३. (परलोकगमन, प्रियजनों से परलोक में मिलना, परलोक में अमर जीवन तथा अधिक सुख की प्राप्ति) ऋग. १०.१६.१—५ ॥ (अजो भाग) ॥ १०. १४. ७ ॥ प्रेहि, यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ॥ ऋग्वेद १०.१४.८—संगच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्तेनपरमेव्योमन् । हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥ ६ ११३.११.—यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते । कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्रमामसृतं कृधि॥ अथर्व १८,४१,३ यत्रादित्या मधुभक्षयन्ति ॥ देखो, 'मधु' नोट २० ॥ (मृत्यु द्वारा परलोक में नवजीवन की प्राप्ति, मृत्यु में जीव की समृद्धि, ईश्वरेच्छा की पूर्ति, और परम प्रेम की तृप्ति) काठकश्रुतिः—दाहकर्म (१३, ११)—"आकूत्यै त्वा स्वाहा । कामायै त्वा स्वाहा । समृध्द्यै त्वा स्वाहा ॥ (तै. सं, ३५,२२) अस्मात्त्वमभिजातोसि, त्वदयं जायते पुनः, असौ स्वर्गायलोकाय स्वाहा ॥ देखो (अथर्ववेद ६,१२०,३) नोट २१ ॥ भूर्भुवः स्वर्लोक के क्रमानुसार परलोक की स्वतःसिद्ध प्राप्ति और

पितृलोक में अधिक आनन्द—बृहदार ४.३. ३३—अथ ये शतं मनुष्याणा मानन्दाः सएक पितृणां जितलोकाना मानन्दः ॥

४. (प्रेम जगत का मूलाधार है)—कठ, ८, १७—प्रिया वो नात्र ॥ कापिष्ठल२८,२—विश्वशंभूःसाधुकर्मा ॥ बृहदारण्यक ४,६,२१ सहैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौसंपरिष्वक्तौ, स इममेवात्मानं-द्वेधापातयत्, ततःपतिश्च पत्नीचाभवताम् ॥ ४,१,३—प्रियमित्येनदुपासीत ॥ गीता १८,६५—प्रियोऽसिमे ॥ ११,४४ प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥

५. (आत्मा साक्षी होने से अमर है)—कौशीतकीय ३, ८,—नरूपंविजिज्ञासीत द्रष्टारंविद्यात् ॥ केन, १२—प्रतिबोधविदितं मतम् । भामती—नहि जातु कश्चिदत्रसंदिग्धेऽहंवानाहंवेति नच विपर्यस्यति नाहमेवेति ॥ नहि वालस्थविरयोः शरीरयोरस्ति मनागपि प्रत्यभिज्ञानगन्धो येनैकत्वमध्यवसीयेत । तस्माद् येषु व्यावर्तमानेषुयदनुवर्तते तत्तेभ्यो भिन्नंयथा कुसुमेभ्यः सूत्रम् ॥ शांकरभाष्य २, २, ५, २८—अन्यास्यावगन्तुश्चक्षुः साधनस्य प्रदीपादिप्रथनदर्शनात् ॥ (केन २), चक्षुषश्चक्षुः॥ आत्मा नित्यः विनाशसामग्री रहितत्वात्—वेदान्त सिद्धान्तमुक्तावली ॥ इस सबका यह आशय है कि दृश्य के मिटने पर द्रष्टा नहीं मिटता और दृश्य का समन्वय द्रष्टा के साथ बना रहता है । विना सूत्र जिस प्रकार कुसुम की माला नहीं

बनती उसी प्रकार विना कुसुम, सूत्र मालात्व को प्राप्त नहीं होता। द्रष्टा दृष्य को साथ लिये रहता है।। मशको दुम्बुरे चैकं पृथक्त्वमपिदृश्यते।। म० भा० ।। त्वां विना निःस्वरूपोहं मां विना त्वं कथं स्थितः—प्रकाशानन्द ।।

६. पुनर्जन्मवाद वेदविहित नहीं । उपनिषत्काल से पाया जाता है। सम्भव है कि आर्यों ने श्रुतिहीन वर्बरजाति के लोगों से यह ग्रहण किया हो।। खौंड लोगों में उनका पुरोहित, बच्चा पैदा होने के सातवें दिन आकर बताता है कि पुरुषाओं में से किसका जीव इस बच्चे में पैदा हुआ है, वह ही नाम उस बच्चे को दिया जाता है। असंस्कृत जातियों का यह मत, महाभाष्यकार पतञ्जलि की इस आज्ञा का कि पौत्र का नाम पितामह के नाम पर रखना चाहिए, आधार प्रतीत होता है ।। यरुबा लोगों का पुरोहित बच्चा पैदा होते ही, आकर बताता है कि पुरुषाओं में से किसने आकर जन्म लिया है ।। मकूश्री और ज़ूनी लोग अपने इष्टदेव कच्छप, ऋच्छ, मृग, और वृक में मनुष्य के जीव का पुनर्जन्म मानते हैं। साईबेरिया के गिलयक लोग ऋच्छ ही में मनुष्य का पुनर्जन्म होना बतलाते हैं ।। दार्शनिकों ने कर्मवाद से समन्वय करने के लिये पुनर्जन्मवाद स्वीकार कर लिया। यदि इस जन्म में दुःख का

कारण पापकर्म नहीं मिलता तो कल्पना की, कि पूर्व जन्म होगा जिसके पापकर्म का फल इस जन्म में दुःख भोगना पड़ा ।। दार्शनिकों का यह मत वेद-संहिता में प्रतिपादित नहीं ।। इस कर्मवाद से ईश्वर की वैषम्य और नैर्घृण्यदोष से तो रक्षा हो गई किन्तु कर्मप्रधान हो जाने से ईश्वर का अपना मूलच्छेद होगया । स्वाभाविक चेष्टाओं की व्याख्या भी पूर्व-जन्म की स्मृति के आधार पर करना ठीक नहीं । यदि ठीक भी हो (योगसूत्र ४. १०. व्यास तथा वाचस्पति) तो कोई हानि नहीं ।। पुनर्जन्म का आक्षेप मनुष्य जन्म की प्राप्ति के उपरान्त आरम्भ होता है, जब जीवन स्मृति और विचार सम्पन्न हो जाता है । मनुष्य का पुनर्जन्म स्मृतिक्षय के कारण सृष्टि-विकास के नियम-विरुद्ध पड़ता है और सङ्कतरूप मनुष्य-जीवन की सार्थकता का संहार करता है, जो ब्रह्म के आदि संकल्प और श्रुति के विरुद्ध है (नोट १. २. ३) ।। बर्बर जातियों में कर्मवाद जादू के रूप में पाया जाता है ।। उनका जादूगर जादू के कर्म से मेंह बरसा सकता है और अभीष्ट प्राप्त कर सकता है ।। इनके मत में मनुष्य को जो दुख प्राप्त होता है वह देवता के कोप का फल है । इनका देवता भय का पात्र है प्रेम का नहीं, वह बलिकर्म द्वारा संतुष्ट होता है उपासना से नहीं ।। इस अन्वेषण से प्रतीत होता है

कि कर्मवाद तथा पुनर्जन्मवाद श्रुतिप्रमाणक नहीं ॥ हमारी यह भूल है कि अज्ञात को ज्ञात करने की चेष्टा करने में कोई वाद खड़ा कर लेते हैं, चाहे उसके जानने में हम कितने ही असमर्थ क्यों न हों !

७. एक ईश्वर में यदि अनेक की प्रतिपत्ति न मानी जाय तो ब्रह्म का यह आदि संकल्प मिथ्या हो जाता है—बहुस्यां प्रजायेय (तैत्ति-२. ६. १ छां ६. २. ३) ॥ रूपाणि देवः कुरुते बहूनि (बृहदा ४. ३. १३) ॥ सोऽत्मानमभिध्यात्वा बह्वीः प्रजा असृजत (मैत्रा २. ६) ॥ बह्वीः प्रजाः पुरुषात् संप्रसूताः (मुण्डक २. १. ५.) ॥ इसलिये इस लोक के जीवन की मित्रता परलोक में सफल होती है न कि बाधित ॥

८ (भवितव्य)—तादृशी जायते बुद्धि र्व्यवसायोऽपि तादृशः। सहायास्तादृशाश्चैव यादृशी भवितव्यता ॥ कर्मणा बाध्यते बुद्धिर्न बुध्द्याकर्म बाध्यते। सुबुद्धिरपि यद् रामो हैमं हरिणमन्वगात् ॥ भगवन्तौ जगन्नेत्रे सूर्याचन्द्रमसावपि। पश्य गच्छत एवास्तं नियतिः केनलङ्घ्यते ॥ नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि। कुशाग्रेणापिसंस्पृष्ट : प्राप्तकालो न जीवति ॥ (मार्कण्डेय) (बृहदारण्यक २. १. १०) नैनं पुराकालान् मृत्युरागच्छति ॥ तैत्ति. २, ८, १, कठ ६, ३) अस्यभयात्—मृत्युर्धावति पंचमः ॥ छान्दोग्य ८, १२. १. शरीरमात्तं मृत्युना ॥ (ऐत-

रेय २, ४) मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत् ।। (गीता १०, ३४) मृत्युः सर्वहरश्चाहम् ।। (१८-६०) ईश्वरः सर्वभूतानाम्—भ्रामयन्सर्व भूतानि ।। (रघुवंश ८, ४६)—स्रगियं यदि जीवितापहा, हृदये किं निहिता न हन्ति माम् । विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेत, अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।। व्यास भाष्य (योगसूत्र ६-१५) में चित के अपरिदृष्ट धर्म का वर्णन है, जो दिष्ट है-चित्तस्य द्वयेधर्माः परिदृष्टाश्चा परिदृष्टाश्च इत्यादि।।

(६–पहला) यदि प्रकृति की प्रवृत्ति को बुद्धिसंगत न माना जाय तो यह प्रत्यय कि पुरुष मरकर परम गतिको प्राप्त होता है मिथ्या हो जाता है। इस के मिथ्या होने पर जगत भ्रमरूप हो जाता है और धर्म विप्लव होता है, जिसे मानने को मानव हृदय कदापि तय्यार नहीं ।। विधि की सार्थकता पुरुष के निमित्त ही मानी जा सकती है अन्यथा नहीं, क्योंकि पुरुष ही सब मूल्य का उपमान है । इसी लिए पुरुष अमर है ।।

(६–दूसरा) अर्जुन के आश्वासन के लिए व्यास परलोक से अभिमन्यु को बुलाना चाहते हैं, पर कहते हैं वह आयेगा नहीं, क्योंकि परलोक में इस लोक की अपेक्षा अधिक सुख है ।। देखो नोट २४ ज० ।

१०. षट् दर्शनों में प्रायः अनीश्वरवाद ही पाया जाता है ।। परलोक का न मानने वाला नास्तिक कहलाता है, न कि

ईश्वर का न मानने वाला—(पाणिनि ४. ४. ६०) अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः ॥ केवल कारणरूप ईश्वर का तिरस्कार, देखो, (ब्रह्मसूत्र २. २. ७. ३७) पत्युरसामञ्जस्यात् ॥ वेदांत में ईश्वर परमसत्ता नहीं, वह भी निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥ बृहदा १. ६. १०– अथयोऽन्यां देवतामुपास्ते ऽन्योसावन्योहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव सदेवानाम् ॥ सांख्य का अनीश्वरवाद प्रसिद्ध है ॥ योग में जहां साधन के और उपाय हैं वहां एक ईश्वर भी है, ईश्वरोपासना की कोई विशेषता नहीं–ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ वैशेषिक तथा न्याय ईश्वर को कर्म से मर्यादित करते हैं । शंकराचार्य ने भी लिखा है । ईश्वरस्तु पर्जन्यवद्द्रष्टव्यः ॥ वात्सायन का कहना है कि पुरुषकारमीश्वरोऽनुगृह्णाति ॥ किन्तु पूर्व मीमांसा में इस मत का इस प्रकार निराकरण किया है—ईश्वरेच्छा यदीष्येत सैवस्याल्लोककारणम् । ईश्वरेच्छावशित्वे हि निष्कला कर्म-कल्पना (श्लोक वार्तिक) ॥ बोधिचर्या में इसी आशय को यूं प्रकट किया है—ईश्वरतः कर्मण एव महत्सामर्थ्यमेव प्रकाशितं स्यात् । तद्वरं कर्मैव पर्युपास्यम् ॥ पूर्वमीमांसादि मतों ने ईश्वर का तिरस्कार कर कर्म प्रधान माना है—न तावत् षड्गुणईश्वरः सेद्धुमर्हति(न्याय कणिका वाचस्पति) ॥ महाभारत में द्रौपदी विधाता का इस प्रकार निरा-

करण करती है—हिनस्तिभूतैर्भूतानिच्छद्मकृत्वायुधिष्ठिर । न मातृपितृवद् राजन् धाताभूतेषुवर्तते ॥ रोषादिवप्रवृत्तोऽयं यथायमितरो जनः (वन. ३०. १—४३) ॥ किन्तु महाभारत के इस पद में कर्म का निराकरण कर ईश्वर ही को सुख दुःख का दाता माना है—अज्ञोजन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुख-दुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वाश्वभ्रमेववा ॥ इस ईश्वरवाद के अनुसार मनुष्य का दुःख उसका अपना कर्म-फल नहीं किन्तु सब दुःख ईश्वर की ओर से परोक्ष सुख के निमित्त प्राप्त होता है:—(ऋग्वेद १०. १२४. ४.) यंकामये तम्तमुग्रं कृणोमि ॥ निजपद पर लाने के लिये ईश्वर जीव को शोक में डालता है—बाष्कलमन्त्रोपनिषत्—परः स्मियानो अविवरस्य शोकं किंसीमिच्छरणं मन्यमानः । न हत्वाहम-प्रणीयस्त्वविष्ठामित्थाजहामि शप्यमानभिन्नु ॥ काठक श्रुति में दुःखका आवाहन इस प्रकार किया है—यमोराजा प्रमृणीभिः पुनातु॥ लक्ष्मीतन्त्र में भगवानका यह उपदेश है कि जिसका मैं भला करना चाहता हूँ उसका धन छीन लेता हूँ, उसका या उसके बन्धुजन का नाश करता हूँ, और उसके लिए रोग उत्पन्न करता हूँ—यस्यानुग्रहमिच्छामि, तस्य वित्तं हराम्यहम् ॥ बंधूनवानाशयिष्यामि व्याधीनुत्पादयाम्यहम् । इन वचनोंके अनुसार दुःख कर्म-फल नहीं, ईश्वरप्रसाद है॥ गीतायाम्—मत् प्रसादात् तरिष्यसि ॥

मार्कण्डेय पुराणे—महामाया हरेश्चैषा तया सँमोह्यते जगत् ॥

११. मनोविज्ञान द्वारा यह कहा जा सकता है कि सँगमें दुःख है इसलिये दर्शनों में निःसङ्गभाव का प्रतिपादन किया है (बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारी शँखवत्-सांसू. ४, ६ ॥ तस्मान्निःसँबन्धो निरनन्दश्चमोक्षः—पार्थसारथिः ॥ आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिलक्षणः पाषाणसदृशो मोक्षो भवतीति वैशेषिकमतम्—प्रपँचहृदय ॥ दग्धेन्धनानलवदुपशमो मोक्षः—प्रशस्तपाद भाष्य ॥ ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृतिः महाभारत तथा मार्कण्डेयपुराण ॥ ३५. ६ ॥ किन्तुमनोविज्ञान की यह रीति धर्मोपदेश नहीं ठहराई जा सकती, इस में और स्वार्थवाद में क्या भेद है ! अपरञ्च चैतन्य का शिलाभाव होना ब्रह्म के आदि सँकल्प के विरुद्ध है जिसमें बहुत्व का प्रतिपादन किया है, तदनुसार निःश्रेयस संगतिरूपसौहर्द में संपन्न है अन्यथा नहीं ॥ मानवहृदय दुःख भोगना स्वीकार करता है, दृषद्वत् होना उसके लिये अस्वाभाविक है ॥ प्रेम प्रकाश की प्राप्ति के लिये दुख की छाया में चलना उसे सदा स्वीकृत रहा है ! वरं वृन्दावने रम्ये शृगालत्वं व्रजाम्यहम् । न च वैशेषिकीं मुक्तिं प्रार्थयामि कदाचन—गदाधर मुक्तिवाद तथा वेदान्त सिद्धान्त मुक्तावली ॥

१२. आर्य धर्म न ईश्वर को पिता माना है, इस्लाम ने नहीं—

(ऋग् १,१,६) सनः पितेव सूनवे, ॥ (वाजसनेयीसं०) पितासि पितानोबोधि ॥ (बृहदारण्यक १,५,१) मेधया तपसा जनयत् पिता ॥ ऋग्—त्वं जामिर्जनानाम् ॥ (गीता ६,१७। ११,४३ ४४। १४,४)—पिताहमस्य जगतः, पितासिलोकस्यचराचरस्य, पितेव पुत्रस्य सखेवसख्युः, अहंबीजप्रदः पिता ॥ इस पिता-पुत्र सम्बन्ध में दुःख का स्थान कथंचित्, श्रद्धाके आधार पर, पुत्र के हितकर ही माना जा सकता है ॥

१३. कर्मवाद यह है कि मनुष्य अपने ही किये का फल पाता है, अनर्जित दुःख का भागी नहीं होता ॥ यह मत, वेद—संहिता में नहीं पाया जाता। वेद में वरुणादि देवताओं के रक्षा करने पर ही मनुष्य की रक्षा होती है ॥ ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्म प्राधान्य है, किन्तु कर्म यज्ञविधि है, जो जादू की सी क्रिया है ॥ स्त्री पुरुष के संसर्ग से प्रजा की वृद्धि होती है, इसलिए यज्ञ पर तत्सादृश्यकर्म किया जाता था कि लोक परलोक की वृद्धि हो (तैत्ति० ब्रा० ५,५, ३-४ रेतः सिचम् ॥ तैत्ति०ब्रा० ६,५, ८ ॥ कठकापिष्ठल-यत् पत्नीअपउपप्रवर्तयति मिथुन एव रेतः प्रसिञ्चति ॥ द्राह्यायणश्रौत—मिथुनौसम्भवेतां यौवर्णौलभेरन् ॥ जैमिनी ब्राह्मण—गोसवः, तस्यव्रतम्। उप-मातरमियाद्, उपस्वसारम, उपसगोत्राम्, तेनेहपुण्यकेशो यौधे-निरीजे शैव्योराजा ॥ उपनिषत् काल में कर्म का यज्ञरूप अर्थ

न रहा और पुण्यापुण्य कर्मके वश पुनर्जन्म मानाजाने लगा। याज्ञवल्क्य ने चुपके से आर्तभाग को यह मत समझाया—बृहदारण्यक (३.२.१३)बौद्धोंने इस मत का घर घर प्रचार किया, दर्शनों ने इसे स्वीकार किया। इस प्रकार कर्म तथा पुनर्जन्मवाद हिन्दू सभ्यता का अंग होगया। किंतु दार्शनिकोंका यह मत भक्तिवाद को अभी तक स्वीकृत नहीं। कर्म और ईश्वरप्रतिपत्ति, पुनर्जन्म और परलोकगमन के विषय में जो शास्त्रों में एकार्थता का प्रयत्न किया गया है वह अभी तक सफल नही हुआ॥ कर्म प्रधान होने से ईश्वरप्रसाद वार्तामात्र है स्वर्ग से लौटकर पुनर्जन्म की प्राप्ति सृष्टिविकास के नियम का उल्लङ्घन है। परलोक में कर्मफल भोग कर इस लोक में फिर जन्म लेकर कर्मानुसार फल भोगना कर्मवाद के असङ्गत है। श्रेय को प्राप्त कर हेय की ओर लौटना परलोकस्थितिका वृथा तिरस्करण है। संगति रूप प्रेम का आघात इस लोक में हो अथवा परलोक में, मानव हृदय की सद्भावना के सदा प्रतिकूल है॥ हन्दू धर्म में यह विसंवाद बराबर जारी है॥ मानव-हृदय की तुष्टि जो जीव के पितृलोक में जाने से होती है इस लोक में पुनर्जन्म से नही॥ कालिदास अज का स्वर्ग भेज कर प्रिया से मेल कराने में सन्तुष्ट हैं—पूर्वाकाराधिकतररुचा सङ्गतः कान्तयासौ लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्द-

नाभ्यन्तरेषु ।। स्वर्ग में अकेले रहना कदापि रुचिकर नहीं, सब बन्धुजन की वहां संगति होना मानवहृदय की तुष्टि और सृष्टि की सार्थकता के लिए परमावश्यक है। इसलिए महाभारत स्वर्गारोहणपर्व में युधिष्ठिर कहते हैं—किं मे भ्रातृविहीनस्यस्वर्गेण सुरसत्तमाः । यत्र ते मम स स्वर्गो नाय स्वर्गोमतो मम ।। न तैरहंविनारंस्ये भ्रातृभिर्ज्ञातिभिस्तथा ।। महाभारत का वियोगान्त जीवन स्वर्ग के संयोगान्त जीवन ही में समाप्त होता है। युधिष्ठिर सब अपने प्रियजनों से मिलते हैं, उन्हें पहचानते हैं, और उनके साथ वहां सदा निवास करते हैं—भीमसेनमथापश्यत् तेनैववपुषान्वितम् । दीप्यमानं स्ववपुषा सादृश्येनैव सूचितम् इत्यादि ।।

१४. जब कर्मवाद का प्रचार बढ़ा तो पुण्यशीलजनों का दुःख देख कर ऐसे अनेक कथानक बनाये गये जिससे यह सूचित हो कि इस जन्म का दुःख पूर्वजन्म के कर्म का फल है, कर्मवाद मिथ्या नहीं ।। जैसे दशरथका पुत्र-वियोग, श्रवणके बधका फल है। किन्तु रामको दशरथ का शोक जो व्यापा वह ऐसा सामान्य दुख है कि उसकी कोई विशेष कथा न बन सकी ।। इसी प्रकार महाभारत में अणी माण्डव्य का धर्म को शाप, जिसके वश धर्म ने विदुर का जन्म लिया, कर्मवाद की पुष्टि मे वार्ता है। इस वार्ताने अणी माण्डव्यके सहनशील जीवन को किस बुरी तरह

बिगाड़ा है। (म, भा, आदि १०७, १०८) अणी माण्डव्य पर चोरीका झूठा अपराध लगाकर इन्हें शूली दीगई थी। शूली पर यह न मरे और न इन्होंने शूली देनेवालों को बुरा कहा-दोषतः कं गमिष्यामि नहि मेऽन्योपराध्यति ॥ यह शूली पर से जीते उतार लिये गये ॥ धर्म ने कहा कि तुमने बचपन में पक्षियों की पूंछ में तिनके चुभोये थे इसलिए तुम्हें शूली दी गयी। उन्होंने धर्म को शाप दिया कि वह शूद्र का जन्म ले और यह मर्यादा स्थापित की कि चौदह बरस की आयु तक मनुष्य को कोई पातक न लगे। आचतुर्दशकाद्वर्षान्न भविष्यति पातकम्॥ जो अणीमाण्डव्य शूली पर भी किसी को बुरा नहीं कहता,वह धर्म को शाप दे, यह कर्मवादियों का हाथ है! तथापि चौदह बरस तक कर्म-फल प्राप्त न हो यह कर्मवाद का स्पष्ट तिरस्कार है। चोरों को भी शरण देने वाला, औरों के पाप से शूली पाने वाला, पापियोंका भी भला चाहने वाला,धर्म अर्थात् 'law'का बन्धन न मानने वाला,कर्मवादका भङ्ग करनेवाला,यह तपस्वी अणीमाण्डव्य महाभारत का मसीह है,जिसने निरपराध शूली खाकर यह सिद्ध किया, कि दुःख कर्म फल नहीं, ईश्वर कुपित होकर दण्ड नहीं देता, वह प्रेम है, दुःख दूसरों की खातिर अनर्जित भी होता है ॥ शाप के वश दुख की जो व्याख्या की जाती है, इससे भी दुःख,कर्म फल सिद्ध नहीं होता,क्योंकि शाप

शाप देने वाले के स्वभाव के अधीन है, जैसे दुर्वासाका शाप उसके अपने कोप-स्वभाव वश है । शापगतदुःख अनर्जित ही है क्योंकि इसका निजकर्म की कार्य-कारण श्रृंखला से कोई सम्बन्ध नहीं ॥ सत्य की परीक्षा के लिये भी देवता मनुष्य को दुख देते हैं ऐसी अनेक कथाएँ पुराण शास्त्रों में पाई जाती हैं ॥ परीक्षोत्तीर्ण होने पर देवता प्रसन्न होते हैं आकाश से पुष्पवृष्टि होती है । हरिश्चन्द्रादि के अनर्जित दुःख के उदाहरण कर्मवाद का अपवाद हैं । इसी प्रकार देवता का प्रसाद, जैसे वायुसंहिता में महादेव के प्रसाद से कृष्ण को पुत्र का लाभ, और कर्म से निरपेक्षित गणिका आदि का तरना कर्मवाद का अपवाद हैं ॥

१५. बृहदारण्यक ३. २. १३—'पुरायो वै पुरायेन कर्मणा भवति पापः पापेनेति' इसका वह ही अर्थ है जो अंग्रेज़ी के इस महावरे का,—Virtue is its own reward.' । इससे सुख दुख का कोई सम्बन्ध नहीं ॥ पुण्यपाप को शारीरक सुख दुख से मिश्रित करना न्याय विरुद्ध है और पुण्य-पाप के प्रत्यय का घोर अपमान है ॥ इस व्यामिश्र के कारण ही हिन्दू-जीवन चैतन्यशून्य होकर समाजधर्म लुप्त प्राय हो गया ॥

१६ मनुष्य दूसरे के किये का फल भी भोगता है, यह

शिक्षा महाभारत के शान्तिपर्व, ७३ वें अध्याय में, ऐलकश्यप संवाद से प्राप्त है—कश्यप उवाच, यथैकगेहे जातवेदः प्रदीप्तः, कृत्स्नंग्रामं दहते चत्वरंवा। विमोहनं कुरुते देव एष, ततः सर्वं स्पृशते पुण्यपापैः। २१। ऐलउवाच,—यदिदण्डः स्पृशतेऽपुण्यपापं, पापंपापे क्रियमणे विशेषात्। कस्यहेतोः सुकृतं नामकुर्याद् दुष्कृतं वा कस्य हेतोर्न कुर्यात्॥ कश्यप उवाच—असंयोगात् पापकृतामपापांस्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्र-भावात्। शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावान्न मिश्रः स्यात पाप-कृद्भिः कथंचित्॥ ऐलउवाच—साध्वसाधून् धारयतीह भूमिः साध्वसाधूंस्तापयतीहसूर्यः। साध्वसाधूंश्चापिवातीहवायुः, आपस्तथा साध्वसाधून्पुनन्ति॥ कश्यप उवाच—एवमस्मिन वर्तते लोक एष नामुत्र वर्तते राजपुत्र, प्रेत्यैतयोरन्तरावान् विशेषो योवैपुरायं चरते यश्चपापम्॥ (यह वचन इस लोक में कर्मफल भोगने का निषेध है जो कर्मवाद के विरुद्ध है) पुरायस्यलोको मधुमान् घृतार्चिर्हिरण्य-ज्योतिरमृतस्यनाभिः। तत्रप्रेत्य मोदते ब्रह्मचारी न तत्र-मृत्युर्नजरा नोतदुःखम्॥ पापस्यलोको निरयोऽप्रकाशो नित्यं-दुःखशोकभूयिष्ठमेव, तत्रात्मानं शोचति पापकर्मा बह्वीः समाः प्रतपन्नप्रतिष्ठः॥ (यह वचन पुनर्जन्मवाद का अपवाद है)॥ अनुशासनपर्व के छटे अध्याय में उदाहरण दिये हैं

कि किस प्रकार एक के किये का फल दूसरा भोगता है—पुरा ययातिर्विभ्रष्टश्च्यावितः पतितः, क्षितौ पुनरारोपितः स्वर्गं दौहित्रैः पुण्यकर्मभिः ३०—३३ ॥ अपने ही सुकृत से स्वर्ग मिले यह बात नहीं—अश्वत्थामा च रामश्च मुनिपुत्रौ धनुर्धरौ। न गच्छतः स्वर्गलोकं सुकृतेनेह कर्मणा ॥ यह बचन गीता में आया है कि पुत्रादि के कर्मभ्रष्ट होने से पितर दुख भोगते हैं—लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ श्राद्ध विधि का आधार मिश्रित कर्म है, न कि अपना ही सुकृत ॥ अथर्ववेद की यह श्रुति है कि एक के अपराध का भागी अथवा दूर करने वाला दूसरा भी होता है—(६. ११६. २--३) यदीदं मातुर्यदिवापितुर्नः परिभ्रातुः पुत्राच्चेतस एन आगन्, यावन्तो अस्मान् पितरः सचन्ते तेषां सर्वेषां शिवोऽस्तुमन्युः ॥ देखो (अथर्व ६. १२०. १.) काठक ब्राह्मण मे एक पर से दूसरे के कर्मफल को दूर करने का वर्णन है—या अलक्ष्मीर्मातृमयीपितृमयी संक्रामणी सहजावापि तां निर्णुदामि ॥ महाभारत (शान्ति ८१, १३) में नारदजी वासुदेव से कहते हैं कि तुम्हारा दुख अपने किये का फल है किन्तु मनुष्य ऐसा दुख भी भोगता है जो उसका अपना कर्मफल नहीं—आपदोद्विविधाः कृष्ण वाह्याश्चाभ्यंतराश्चह । प्रादुर्भवन्ति, वाष्णे यस्वकृतायदिवान्यतः ॥ सोऽयमाभ्यन्तरा तुभ्यमापत्-

कृच्छ्रा स्वकर्मजा ।। दुःख की निज कर्म से अतिव्याप्ति होने के कारण यह कर्मवाद का अपवाद है ।।

१७. शान्तिपर्व, अश्मगीता में कर्मवाद का खण्डन इस प्रकार किया है—शीतमुष्णं तथा वर्षं कालेनपरिवर्तते एवमेव मनुष्याणां सुखदुःखे नरर्षभ ।। नौषधानि न मन्त्राश्च न होमा न पुनर्जपाः । त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरयाचापिमानवम् ।। शान्ति पर्व में २२३ अध्याय से २२७ तक, शक्र के प्रह्लाद, बलि, नमुचि संवाद में, कर्म का तिरस्कार कर, काल या स्वभाव का प्राधान्य माना है—यथा वेदयते कश्चिदोदनं वायसो ह्यदन । एवं सर्वाणि कर्माणि स्वभावस्यैवलक्षणम् ॥ नीलकण्ठ ने इसकी यह व्याख्या की है कि 'कर्माणि स्वभावं प्रकाशयन्ति नतुवर्तयन्ति ।। बली इन्द्र से कहता है (२२७. अ.)' सुख-दुःखे हिपुरुषः पर्यायेणाधिगच्छति। पर्यायेणासिशक्रत्वं प्राप्तः शक्र न कर्मणा ।। यान्येव पुरुषः कुर्वन सुखैः कालेन युज्यते पुनस्तान्येवकुर्वाणो दुखैः कालेन युज्यते ।। (२२४. ४५.) नाहंकर्ता नचैवत्वं नान्यःकर्ता शचीपते, पर्यायेण हि भुज्यन्ते लोकाः शक्र यदृच्छया ॥ '२२३. १८' यदिस्यात पुरुषः कर्ता शक्रात्मश्रेयसेध्रुवम् । आरंभास्तस्य सिद्ध्येयुर्नतुजातु पराभवेत् ।।

१८. यदि मनुष्य-प्रेम मोह है, तो ईश्वर-प्रेम भी मोह है ।। निःसंग

भाव स्वार्थपरता का ही दूसरा नाम है, केवल केन्द्रभेद है, विषयपरता के स्थान में अपना अमुत्र चिन्तन है ॥ जीवनाभिनिवेश जो प्रेमाग्नि में दग्ध हो जाता है, निःसंगभाव में सूक्ष्मरूप से बना रहता है ॥

१६. (महात्माओं को विशेष दुख) महाभारत में धृतराष्ट्र ने ठीक कहा है कि दुःख का मूल होने के कारण मनुष्य जन्म ही पर धिक्कार है—धिगस्तु खलुमानुष्यम् ॥ महात्माओं को विशेष दुख प्राप्त है—(म. भा. व. १३०. ६) अत्रैव पुत्रशोकेन वसिष्ठोभगवान् ऋषिः । बद्ध्वात्मानं निपतितो विपाश : पुनरुत्थितः ॥ [व. १३७. १६] विलप्यैवं बहुविधं भरद्वाजोऽदहत् सुतम् । सुसमिद्धंततः पश्चाद् प्रविवेश हुताशनम् ॥ व्यास जो युधिष्ठिर को आश्वासन दिलाते हैं अपने पुत्र के मरने पर आप कैसे सशोक हैं—[शा. ३३३ ३८] तमुवाचमहादेवः सान्त्वपूर्वमिदंवचः, पुत्रशोकाभिसंतप्तं कृष्णद्वैपायनं तदा ॥ छायां स्वपुत्रसदृशीं सर्वतोऽनपगां सदा, द्रक्ष्यसे त्वं च लोकेस्मिन मत्प्रसादान् महामुने । सोऽनुनीतो भगवता स्वयं रुद्रेण भारत, छायां पश्यन् समावृत्तः स मुनिः परया मुदा ॥ भीष्म के मरने पर गङ्गा माता रुदन करती हैं, [शा. १६८. २१—] ततो भागीरथी देवी तनयस्योदके कृते, उत्थाय सलिलात् तस्मात् रुदती शोक-

विह्वला ॥ दामोदर आश्वासन दिलाते हैं—वसूनेष गतो देवि पुत्रस्ते विज्वरा भव ॥ शिवजी मनुष्य के मृत्यु सँकट से दुखी होते हैं (शा. १४३. १११) देव्या प्रणोदितोदेवः कारुण्यार्द्रीकृतेक्षणः, ततस्तानाह मनुजान् वरदोऽस्मीति शंकरः ॥ वसुदेव के पुत्र राम और कृष्ण का किस करुणावस्था में दाह दिया जाता है [मौ७. ३१] ततः शरीरे रामस्य वसुदेवस्यचोभयोः, अन्विष्य दाहयामास पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ उत्तररामचरितमें वियोग के समय सीता के इन थोड़े से शब्दों में दुःख की कैसी वेदना भरी है—"हा दैव, एष मया विनाहमप्येतेन विनेति स्वप्नेऽपिकेनसम्भावितमासीत्"! राम कीभी कैसी करुणावस्था है, "हन्त ! पर्यवसितंजीवितप्रयोजनं रामस्य!" राम रो रो कर जीते हैं—शोकक्षोभेचहृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥ देखो, द्रोण पर्व ५२ में अभिमन्युवध पर अर्जुन का विलाप, स्त्री पर्व में गान्धारी आदि स्त्रियों का विलाप ॥ हेमचन्द्रयोगशास्त्र में, महावीर को लोक के दुःख पर रोता दिखाते हैं—Hail to the Jina hero's eyes Whose pupils are rigid with pity, And wet with tears, from pity, Even for him who has committed sin (1. 3) यह वर्णन चैतन्य को शिलात्वमुक्ति का और कर्मवाद का विरोधी

है ॥ जड़चैतन्य का भेद मान कर आत्मा को केवल चिन्मात्र मानने से चैतन्य का शिलात्ववाद उत्पन्न होता है, किंतु जड़ की अलग सत्ता नहीं, चैतन्य में इसका समावेश होने से चैतन्य प्रबुद्धअवस्था में प्रत्ययशून्य नहीं कहा जा सकता ॥ द्रष्टा-दृश्य मिथुन की विसृष्टि नहीं ॥

२०. मनुष्य निःसंग नहीं । ईश्वर का मनुष्य, मनुष्य का ईश्वर और मनुष्य का मनुष्य मधु है । यह सदा एक दूसरे के साथ हैं:—[बृहदारण्यक २. ४. १.] इदं मानुषं सर्वेषां भूतानां मधु । अस्यात्मनः सर्वाणिभूतानिमधु ॥ (म. भा द्रो. ७६) कृष्ण भगवान ने कहा है कि मनुष्य मेरा आधा शरीर है शरीरार्धममार्जुन : । यस्तं द्वेष्टि समांद्वेष्टि यस्तं चानु स मामनु ॥ 'उद्योग'४० ब्रह्मा कहते हैं— नारायणोनरश्चैव सत्वमेकं द्विधा कृतम् ॥

२१ ऋग् १०. १४. ८. देखो नोट ३ ॥ अथर्व वेद ६. १२०, ३- यत्रा सुहार्दः सुकृता मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः, अपश्रोणा अङ्गै रह्रुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ चपुत्रान् ॥ इस श्रुति के अनुसार परलोक में सशरीर पिता पुत्र सब मिल कर सुख भोगते हैं ॥ परलोक से फिर लौटना नहीं होता, 'अथर्व १८. ३. ६२.' परैतुमृत्युरमृतं न एतु ॥ अमृतं भुङ्क्ष्व ॥ '१८ ४. ४.' स्वर्गालोका अमृतेन विष्ठा '१८. ४, ६४' साङ्गाः

स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥ परलोकगत पितरों के लिए ही श्राद्ध कर्म होसकता है। पुनर्जन्मवाद में श्राद्ध असमञ्जस है। इसकी यह घृणात्मक और हास्यास्पद स्थिति है—'योग. उप. ४' या माता सा पुनर्भार्या ॥ यः पिता स पुनः पुत्रो, यः पुत्रः स पुनः पिता ॥

२२. काठक श्रुतिः (१३-११)—आकूत्यैत्वा समृधेत्वा कामायत्वा स्वाहा। देखो नोट् ३ ॥ अथर्ववेद (११. ४. ११) की श्रुति है कि मृत्यु जीवन है—प्राणो मृत्युः ॥

२३. वाल्मीकीय रामायण—(मनुष्य अपनी जान का आप मालिक नहीं, क्योंकि यह पैदा होने और मरने में विवश है, दुःख की समान विधि, मर कर सब को परलोक गति का सुख) पिता का मरना सुनकर राम अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं—बभूवगतचेतनः, भुवि पपात ह—बिलक बिलक कर (नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां) रोते हैं और सीता और लक्ष्मण को पुकारते हैं—सीते मृतस्ते श्वशुरः पितृहीनोऽसिलक्ष्मण ॥ फिर धीरज धरकर भरत को आश्वासन दिलाते हैं—नात्मनः कामकारोहि पुरुषोऽयमनीश्वरः । इतश्चेतरश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति ॥ सर्वेक्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः, संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ आत्मानमनुशोचत्वं किमन्यमनुशोचसि। आयुस्तु हीयते यस्य स्थितस्यास्य गत-

स्यच ॥ यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे । समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन ॥ एवंभार्याश्चपुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनिच । समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवोह्येषां विनाभवः ॥ यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथिस्थितः । अहमप्याग-मिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥ एवंपूर्वैर्गतोमार्गः पितृ पैतामहै ध्रुवः । तमापन्नः कथं शोचेद् यस्यनास्ति व्यतिक्रमः ॥ सजीर्णमानुषं देहं परित्यज्य पिता हि नः । दैवीमृद्धिमनुप्राप्तो ब्रह्मलोकविहारिणीम् ॥ (अयोध्या, सर्ग, १०३, १०४) इस बात पर ध्यान देने से कि हम भी अवश्य मरेंगे, प्रियवर के मरने का शोक कम होता है—तू चल मैं आया वाला हिसाब है ॥इस बात पर भी ध्यान देना उचित है कि जाबालि का राम को यह उपदेश कि कोई किसी का नहीं है (नास्तिकश्चिद्धिक-स्यचित्) इसलिये दशरथ के मरने का शोक न करना चाहिये; वाल्मीकि ऋषि ने निन्दित किया है—धर्मापेत-मिदंवचः—(अयोध्या स. १०६) राम का दुख भोगना, दशरथ का मर कर स्वर्गति को प्राप्त करना, राम का संगति तथा सौहार्द में आस्था रखना— यह सब वर्णन कर्मवाद, पुर्नजन्म तथा प्रेम के मोहवाद का अपवाद है ॥ 'उत्तरकाण्ड ६८' सीता के रसातल प्राप्त होने पर राम रुदन करते हैं—सरुदित्वाचिरं कालं बहुषोवाष्पमुत्सृजन् ॥ ब्रह्मा आकर उन्हें समझाते हैं कि

संताप मत करो, सीता से तुम्हारा परलोक में मेल होगा—
स्वर्गे ते संगमोभूयो भविष्यति न संशयः ॥
(तुलसीकृत रामायण से उद्धृतपद-प्रेम तथा दुख की स्वाभाविकता और ईश्वरेच्छा की प्रबलता,) श्रवण कुमार मरते समय भी अपना दुख भूल कर माता पिता के सुख की चेष्टा करता है और दशरथ को यह रुलाने वाला सन्देश देता है:—तिनको हित से नीर पिवाई । पाछे कहियो मम समुझाई ॥ करहिं न शोच करहु उपदेशा । सत्यसंध रघुवंश नरेशा ॥ जब दशरथ श्रवण के माता पिता को जल पिलाने लगे । तब मातापिता यह करुणवचन बोले:—पुत्र न बोलत आज तुम हम से सुन्दर बैन । कारण कवन सो कहहु तुम, जासो हो जिय चैन ॥ और पुत्र के मरने का दारुण वृत्तान्त सुनकर विलाप कर उन्होंनेप्राण त्याग कर दिये ॥ राम के वियोग में दशरथ मरते समय कहते हैं:—प्राण पियारे बनहिं सिधारे । अब तक प्राण न गये हमारे ॥ अब सुख कौन मिलहि जगमाहीं । जेहिते प्राण न तनु ते जाहिं ॥ प्रिय सरवन की कथा ते अब मोहिं रह्यो न धीर ॥ पुत्र बिना जे नहीं जिये धनधन ते नर वीर ॥ दशरथ का मरना सुनकर राम अतीव व्याकुल होते हैं ॥ मरणहेतु निजनेह विचारी । भयो अतिविकल धीरधुरधारी ॥ लक्ष्मण के मूर्छित

होने पर राम विलाप कर रोने लगते हैं ॥ सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल स्वभाऊ ॥ जो जन- तेऊं वन बन्धु विछोहू। पितावचन मनतेऊं नहि ओहू ॥ बहु विध शोचत शोचविमोचन। स्रवत सलिल राजिवदल- लोचन ॥ तुलसींदास का यह भाव सराहनीय है कि मनुष्य के दुख में ईश्वर भी दुखी होता है—उमा अखण्ड एक रघुराई। नरगतिभक्ति कृपालु दिखाई ॥ रावण भी पुत्रशोक में रुदन करता है—हासुतसंतत आज्ञाकारी। करि विलाप दशकंध पुकारी ॥ मन्त्री समझाते हैं—सुत वित नारि त्रिविध सुख कैसे। उपजहिं घटा जाहि नभ जैसे ॥ तडित विदित देखी घन माहीं। रहै न थिर तहं तुरत छिपाहीं ॥ यह जिय जानि सुनहु दशभाला। बचहिं न कोउ जग आये काला ॥ तुलसीदास एक और प्रसंग में संसार का सब दुख इस उपदेश द्वारा दूर करते हैं—तात जाइ जनि करहु गलानी। ईशअधीन जीवगति जानी ॥ भाव यह है कि ईश्वर जो कुछ करता है जीव की भलाई के लिये ही है ॥

२४. महाभारत में विचार-स्रोत अभी सूखे नहीं पड़े हैं। अनेक विचारों की धाराएं बहरही हैं ॥ यथा, (शान्ति. ३२. १२) ईश्वरोवाभवेत् कर्ता पुरुषोवापि भारत। हठोवावर्तते लोके कर्मजंवाफलं स्मृतम् ॥ इधर बौद्धमत पुराणगाथाओं का रूप

पलट पलट कर कर्म, पुनर्जन्म, और स्नेहशून्यता के मत का प्रतिपादन कर रहा है, यथा शान्ति १. ६७. ४६ ॥ इस कारण एकार्थता और भी भङ्ग हो रही है ॥ यहां पर दिग्-दर्शन मात्र कुछ संदर्भों का अवतरण किया जाता है—(क.) 'ईश्वरवाद' भीष्मस्तवराज, ईश्वर का कर्तृत्व—-योमोहयति भूतानिस्नेहपाशा नुबन्धनैः । सर्गस्यरक्षणार्थाय तस्मै मोहात्मनेनमः ॥ भीष्मपर्व में भीष्म की ईश्वरार्पणबुद्धि का प्रज्वलन्त उदाहरण (५६ ६७—६८) एह्येहिदेवेश जगन्निवास नमोऽस्तुतेमाधवचक्रपाणे । प्रसह्य मां पातय लोकनाथ रथोत्तमात् सर्वशरण्यसंख्ये ॥ त्वया हतस्यापिममाद्य कृष्ण श्रेयः परस्मिन्निह चैवलोके । सम्भावितो स्म्यन्धक वृष्णिनाथ लोकैस्त्रिभिर्वीर तवाभियानात् ॥ आश्वमेधिकपर्व '३' में व्यास युधिष्ठिर को समझाते हैं—ईश्वरेण चयुक्तोऽयं साध्वसाधुचमानवः । करोति पुरुषः कर्म तत्र का परिदेवना ॥ 'व. २७३-युधिष्ठिर' मन्येकालश्चभगवान् दैवंचविधिनिर्मितम् ॥ भवितव्यं चभूतानां यस्यनास्तिव्यतिक्रमः ॥ धात्रातुदिष्टस्यवशेकिलेदं सर्वजगत्तिष्ठति न स्वतन्त्रम् ॥ (ख, —कर्मफल (अनुशासन १, ७२)—सर्वेकर्मवशावयम् ॥ '६,५'—नाबीजंजायतेकिंचित् ॥ '७, २२ '—यथा धेनुसहस्रेषु वत्सोविन्दति मातरम् । एवं पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ '५, २०'—

अकृत्वा मानुषंकर्म यो दैवमनुवर्तते । वृथाश्राम्यति सम्प्राप्य पतिंक्लीवमिवाङ्गना ।। (ग, 'भवितव्यता) शान्ति १७४, २७– दैवायत्तमिदंसर्वं सुखदुःखे भवाभवौ ॥ (शा, २२६, १०) भवितव्यं यथा यच्च भवत्येव तथा तथा ॥ '२२ '—प्राप्तव्यान्येव चाप्नोति दुःखानिच सुखानिच ॥ ' शा, २३२, २०- व्यास ' पौरुषंकर्मदैवंच फलवृत्तिस्वभावत: । त्रयएतेऽपृथग्भूता न विवेकं तु केचन ।। (घ, काल का प्रभुत्व) भीष्म युधिष्ठिर को समझाते हैं (अनुशा १, ८२) नैवत्वया कृतंकर्म नापिदुर्योधनेनवै कालेनै तत्कृतंविद्धि निहतायेन पार्थिवाः ॥ (शान्ति--व्यासयुधिष्ठिर को समझते हैं) नाकालतो म्रियते जायते वा ॥ अश्मगीतायाम्—विचित्रः कालपर्ययः, विचित्रं विधिचेष्टितम् ।। (उद्योग ११२, २० नारद) कालोहि परमेश्वर:) (च, 'दुःख सुख के निमित्त हैं' इसका सहन करो) व, १८३, ६५' मार्कण्डेय युधिष्ठिर को समझाते हैं— माभूद्विशङ्का तव कौरवेन्द्र दृष्ट्वात्मनः क्लेशमिमं सुखार्हम ॥ (शा. ३२१. २३) व्यास शुकको उपदेश करते हैं—ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं नकामार्थायजायते इहक्लेशायतपसे प्रेत्यत्वनुपमं सुखम् ।। (व ३२) युधिष्ठिर द्रौपदी को धर्म का स्वरूप बताते हैं—नाहं कर्मफलान्वेषी राजपुत्रि चराम्युत । ददामिदेयमित्येव यजेयष्टव्यमित्युत ।। धौम्य

युधिष्ठिर को दुःख की व्यापकता बताते हैं 'व. ३१५. १२' देवैरप्यापदः प्राप्ताः ॥ शान्तिपर्व में यह वचन है—प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजीतः ॥ द्रौपदी वीर के मरने पर प्रसन्न होती है----अधर्मः सुमहानेषयच्छय्यामरणंगृहे ॥ म्रियते रुदतांमध्येज्ञातीनां नसपूरुषः ॥ अशोच्योहिहतः शूरः स्वर्गलोके महीयते ॥ शान्ति पर्व (१८०. २७) में कश्यप इन्द्र को समझाते हैं कि आत्मा ऐसी रहस्यात्मक वस्तु है कि शोक और उसके दूर करने का उपाय दोनों इसी में मौजूद हैं—अस्त्येव त्वयि शोकोपि हर्षश्चापि तथात्वयि । सुखदुःखे तथाचोभे तत्र का परिदेवना ॥

(छ. 'मृत्यु है ही नहीं') 'व. २०६. २६' व्याधउवाच—न जीवनाशोस्ति हिदेहभेदे, मिथ्यैतदाहुर्म्रियतीतिमूढाः । जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति, दशार्धतैवास्य शरीरभेदः ॥ 'उद्योग ४२' धृतराष्ट्र सनतसुजात से पूछते हैं—नमृत्युरस्तीतितवप्रवादम् ? सनतसुजात कहते हैं, ठीक है—प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि, तथाप्रमादंममृतत्वं ब्रवीमि ॥ 'शान्ति ३१८. ७८' न देहभेदे मरणं विजानताम् । 'स्वर्गारो ५.६.३' जीवोनित्यः ॥ 'शा० १८७. २६' सचेष्टते चेष्टयते च सर्वम् ॥ शरीर से निकलते हुए जीवको दिव्यचक्षुः से सिद्ध लोग देखलेते हैं—'अनुगीता १७. २६,३३' निष्क्रामन् कम्पयत्याशु तच्छरी-

रमचेतनम ॥ पश्यन्त्येवंविधं सिद्धा जीवं दिव्येनचक्षुषा ॥ मनुष्य मरता नहीं, जिसतरह चांद गहन में आता है उस तरह छुप जाता है 'शा ६' यथा चन्द्रो ह्यमावस्यामालिंगत्वान्नदृश्यते। नच नाशोऽस्यभवति तथा विद्धिशरीरिणाम् ॥ 'शा. ३३०. १६' नारद शुक से कहते हैं, जीने में दुख है और मरने में सुख है—सुखाद् बहुतरं दुःखं जीविते नात्र संशयः । स्निग्धत्वं चेन्द्रियार्थेषुमोहान्मरणमप्रियम ॥ योगभाष्य में भी व्यास ने लिखा है—पशून धिकृत्य मनुष्यजातिः श्रेयसीः देवानृषीश्चां-धिकृत्यनेति '४. ३३.' ॥ जैगीषव्य उवाच, यत् किंचिदनु-भूतं तत्सर्वं दुःखमेवप्रत्यवैमि '३,१८' '(ज. मरकर परलोक गति, पुनर्जन्मका अपवाद')—'स्त्री पर्व ११' विदुर कहते हैं, प्रमाणं यदि शास्त्राणि गतास्ते परमां गतिम् ॥ तेषांकाम-दुघांल्लोंकान्, इन्द्रः संकल्पयिष्यति ॥ 'शा ३२१. ८०' मनुष्य-पद के उत्तर स्वर्गारोहण है, यह क्रममुक्तिवाद है अर्थात पुनर्जन्मवाद नहीं—सोपान भूतं स्वर्गस्य मानुष्यंप्राप्यदुलर्भम॥ नारद, अकम्पन को उसके पुत्र के मरने पर समझाते हैं कि शोक मत करो तुम्हारा लड़का मरा नहीं स्वर्ग को प्राप्त हुआ है (द्रोण ५४, ४८) सर्वेदेवा मर्त्यसंज्ञा विशिष्टास्तस्मात् पुत्रं माशुचोराजसिंह । स्वर्गं प्राप्तो मोदते ते तनूजो नित्यं रम्यान् वीरलोकानवाप्य ॥ 'द्रो. ७१. १४ व्यास' परलोक

में इस लोक से अधिक सुख है,-नतुस्वर्गादयं लोकः काम्यते स्वर्गवासिभिः—इसलिए अभिमन्यु को वापिस नहीं लासकते-नचेहानयितुं शक्यम्-क्योंकि वह स्वर्ग का सुख छोड़ कर अब इस लोकमें आना पसन्द न करेगा ।।(सौप्ति ५६)स्वर्गमें मिलने की आशा, कृप कृतवर्मा, दुर्योधन से प्रकट करते हैं—स्वर्गेनः संगमः पुनः ।। युधिष्ठिरादि सब बन्धु जन स्वर्गारोहण कर स्वर्ग में मिलते हैं ।।

(ट—मृत्यु पर आश्वासन) श्रीकृष्ण अर्जुन को अभिमन्यु के मरने पर यह आश्वासन दिलाते हैं—सर्वेषामेष वै पन्थाः ।। सुभद्रा को भी समझाते हैं कि स्वर्ग तो मर कर ही जाते हैं उसमें रोना कैसा ! गतस्तव वरारोहे पुत्रः स्वर्गं ज्वरं जहि ।। (शा० २६) नारद सृञ्जय को उसके पुत्र के मरने पर समझाते हैं कि हम सब को दुःख भोगना और मरना है—सुख दुःखै रहं त्वं च प्रजाः सर्वाश्च सृञ्जय, अविमुक्ता मरिष्याम स्तत्र का परिदेवना ।। अनुगीता में वर्णन है कि वैद्य भी औषध सेवन करते२ मरते हैं-ते पिबन्तः कषायांश्च सर्पींषि विविधानि च। न मृत्युमतिवर्तन्ते वेलामिव महोदधिः ।। हम अपनी जान के भी आप मालिक नहीं—नायमत्यन्तसम्वासो लभ्यते जातु केनचित्। अपिस्वेन शरीरेण किमुतान्येन केनचित् ।। व्याधि मृत्यु का ही रूपान्तर है [शा० २५८, ४२] तस्याश्चैव व्याधय-

स्तेश्रुपाताः । प्राप्ते काले संहरन्तीह जन्तून् ॥ [द्रो० ७१८-१८] व्यास अर्जुन से कहते हैं—जीवन्त एव नः शोच्या ननु स्वर्गगतोऽनघ ॥ [आदि० २३३] जरिता के विलाप पर नीलकंठ यह व्याख्या करते हैं—अत्र संसाराटव्यां मातापितृभ्रातृ समर्था किंतु सर्वे स्वार्थकामाः ॥ कहते हैं कि महाभारत में महारथियों की मृत्युगाथा का वर्णन इसलिये किया है कि एक का दुःख सुनकर दूसरे को धीरज हो—ननुमृत्योःस्वाभाविकत्वेऽपि गुणवत्पुरुषवियोगो दुःखायेत्येवा शङ्क्य 'दुःखेदुःखाधिकान् पश्यन् तेन शोकोपनीयते' इत्युक्तेः ॥ सेनजित को, पुत्र शोक पर, ब्राह्मण समझाता है—[शान्ति १७४]—शोच्यः किमनुशोचसि । यदा त्वामपिशोचन्तः शोच्यायास्यन्तितांगतिम्, सर्वे तत्र गमिष्याम यतएवागतावयम् ॥ आत्मापिचायन मम॥ जिस प्रकार महाभारत के अन्त में पाण्डव भ्राता मरकर परलोक में फिर मिल गये इसी प्रकार हमें मरकर अपने प्रियवरों से फिर मिलने की आशा सजीव करती है ॥ (ठ. मृत्यु कीविधि अटल है)—(शा. १७५) अनवाप्तेषु कामेष मृत्युरभ्येति मानवम् ॥ सुभद्रा रोती है कि उसके बेटे को कोई न बचा सका—धिग्बलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्य धनुष्मताम् । धिग्वीर्यं वृष्णिवीराणां पञ्चालानां च धिग्बलम् ॥ हावीर ! दृष्टो नष्टश्च धनं स्वप्न इवासि मे ॥ अहो ह्यकाले

प्रस्थानं कृतवानसि पुत्रक। विहाय फलकाले मां सुगृद्धां तव दर्शने।। मौत की घड़ी को ईश्वर भी नहीं टाल सकता— मौसल पर्व में कृष्ण की साक्षी में (कृष्णस्य पश्यतः) उनके अपने यादवकुल का नाश हो गया और वह कुछ न कर सके– कृतान्तमन्यथा नैच्छत्कर्तुं स जगतः प्रभुः।। (स्त्री पर्व) व्यास धृतराष्ट्र को समझाते हैं—न च दैवकृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित्। घटतापिचिरंकालं नियन्तु मिति मे मतिः ।। विदुर का यह महत्व पूर्ण भाषण है—उत्तिष्ठ राजन् किं शेषे माशुचो भरतर्षभ। एषावै सर्व सत्वानां लोकेश्वर परागतिः।। अयुध्यमानो म्रियते युध्यमानस्तु जीवति। कालं प्राप्य महाराज न कश्चिदतिवर्तते।। एकसार्थप्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम् यस्य कालः प्रयात्यग्रे तत्र का परिदेवना।। यांश्चापि निहतान् युद्धे राजंस्त्वमनुशोचसि। न शोच्या हि महात्मानः सर्वे ते त्रिदिवंगताः।। न जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हसि ।। अशाश्वतमिदम् सर्वं चिंत्यमानं नरर्षभ। कदली संनिभोलोकः सारोह्यस्य न विद्यते।। यथा च मृन्मयं भाण्डं चक्रारूढं विपद्यते। किंचित् प्रक्रियमाणं वा कृतमात्रमथापिवा ।। [एवम्] यौवनस्थोपि मध्यस्थो वृद्धोवापि विपद्यते।।प्राक्कर्मभिस्तु भूतानि भवन्ति न भवन्ति च। एवंसांसिद्धिकेलोके किमर्थ मनुतप्यसे।। विदुर का आशय यह है कि हर दृष्टि से मृत्युकाल नियत है

और मरकर सबको परागति प्राप्त होती है इसलिये मृत्यु अशोचनीय है ॥

[ड—महाभारत का धर्मोपदेश]—तुलाधार ने जाजलिसे कहा है—[शा०२६२-५३]कारणाद्धर्ममन्विच्छेन् न लोकचरितं चरेत् ॥ नीलकण्ठ व्याख्या करते हैं—न गतानुगतिकः स्यादित्यर्थः अन्त में [स्त्री- ४-१२-१६] जल प्रदानिक पर्व में विदुर साम्य-वाद का कैसा प्रभावशाली उपदेश करते हैं:—अहो विनिकृतो लोको लोभेन च वशीकृतः । लोभक्रोधभयोन्मत्तो नात्मानमवबुध्यते ॥ कुलीनत्वे च रमते दुष्कुलीनान् विकुत्सयन् । धनदर्पेण दृप्तश्च दरिद्रानपरिकुत्सयन् ॥ मूर्खानिति परानाह नात्मानं समवेक्षति । दोषान् क्षिपति चान्येषां नात्मानं शास्तुमिच्छति ॥ यदा प्राज्ञाश्च मूर्खाश्च धनवन्तश्च निर्धनाः । कुलीनाश्चा कुलीनाश्च मानिनोऽथाप्यमानिनः ॥ सर्वेपितृवनं प्राप्ताः स्वपन्ति विगत त्वचाः । विशेषं न प्रपश्यन्ति तत्रतेषां परेजनाः । येन प्रत्यवगच्छेयुः कुलरूपविशेषणम् ॥ यदा सर्वे समंन्यस्ताः स्वपन्ति धरणीतले । कस्मादन्योन्यमिच्छन्ति प्रलब्धु मिहदुर्बुधाः॥ अध्रुवेजीवलोकेस्मिन् योधर्म मनुपालयन् जन्म प्रभृति वर्तेत प्राप्नुयात्परमांगतिम् ॥ [इन पदों की टीका करने में नीलकंठ को बड़ा भ्रम हुआ है वह मान्य नहीं] गीता (अध्याय २-११-३०) यह बात ध्यान देने योग्य है कि

छब्बीसवें श्लोक में पुनर्जन्मवाद को सिद्धान्त न मानकर केवल मतरूप से प्रकाशित किया है—अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ॥ सिद्धान्त यह है कि जीव अज और अमर है ॥ सुख दुख इस शरीर का है और शरीर से परे भी जीव सजीव होने से अशोच्य है अर्थात परम सुख में है। इसलिये मुसकुराकर मौत का सामना करो !

शोच अशोची का करत, कहत ज्ञान की बात । शोच नहीं पंडित करत, जीव न विनसै न जात ॥ ११ ॥ हम तुम और सब नर जिते, इनका नाश न मान। तीन काल में थिर रहैं, ऐसा सबको जान ॥ १२ ॥ बाल युवा और वृद्धता ज्यों एकी देह में होय । त्यों देही की देहगति, धीर न मोहत सोय ॥ १३ ॥ अर्जुन इन्द्रियचित मिले, विषय जो सुख दुख देत। आवे जावे न थिर रहे, यासे कीजे न हेत ॥ १४ ॥ जो है सो विनसै नहीं, जो विनसै सो नाहि। जो इन तत्वन को लहैं, गिनिये ज्ञानी ताहि ॥ १६ ॥ अंतवंत सब देह हैं, जीव रहत है नित्त। अविनाशी वह वस्तु है, युद्ध करो किन मित्त ॥१८॥ यह न मरे उपजे नहीं, भयो न आगे होय। अजर पुरातन नित्य है मारे मरे न सोय ॥ २० ॥ जैसे पट जीरण तजे, पहरत नर जो नवीन। देह पुरानी जीव तजि, नई गहत परवीन ॥ २२ ॥ यह कटे न हथियार से, पावक सके न

जार। जल में चीलि न हो सके, शोष सके न बयार ।। २३ ।। कटे, जले, सूखे नहीं, और न भीजे योग। नित्य रहै सब ठौर थिर, अविनाशी बिनरोग ।।२४।। प्रकट नहीं जो अचिन्त है, अविकारी तू जान। ऐसा वाको जानके शोच न कीजे मान ।। २५ ।। जो तू जानत जीव को, जन्म मरण पुनि होय। तऊ शोक तू मत करै, मन दृढ़ता में गोय ।। २६ ।। जो उपजै सो बिनसि है, मरे जो उपजै आय। होनहार सो होत है, तहां न सोच बढ़ाय ।। २७ ।। पीछे ताहि न जानिये, आगे पड़े न जान। मांझहि में कुछ देखिये, ताको सोच न मान ।। २८ ।। जीव कभी मरता नहीं, बसत सबन के देह। ताते सोच न कीजिये, जानिये जीव सदेह ।। ३० ।।

२५. बुद्धानुशासन और बौद्धमत में भेद है। हमने बुद्धानुशासन का प्रतिपादन किया है न कि बौद्धमत का। विस्तार के भय से इस भेद की व्याख्या यहां नहीं कर सकते ।। इस बुद्धानुशासन का समर्थन इन योग सूत्रों द्वारा होता है—[२-३]अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। [२-३३] वितर्क बाधने प्रतिपक्ष भावनम् ।। [१-३३] मैत्रीकरुणा–मुदितोपेक्षाणां सुख-दुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम् ।। योग-भाष्य व्यास [३-१८] जैगीषव्य उवाच—दुःखरूप स्तृष्णातन्तुः, तृष्णादुःखसन्तापापगमात् तु प्रसन्नमबाधं सर्वानुकूलम् सुख

मिदिमुक्तमिति ॥

२६. [मार्कण्डेयपुराण, अध्याय १५] विपश्चित् अपना स्वर्ग छोड़ कर नरक में दुखियों का दुख दूर करने के लिये निवास करता है। इन्द्र के बुलाने पर भी स्वर्ग नहीं जाता और कहता है—न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यते नरैः । यदार्तजंतुनिर्वाणदानोत्थमिति मे मतिः ।५७। तस्मान्नतावद्यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः । मत्सन्निधानात् सुखिनो भवंति नरकौकसः ।६०। धिग्क् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम् । योनार्तमनु गृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् । ६१ । प्राप्यंते ते यदि सुखं वहवो दुःखिते मयि । किं वा प्रप्तं मया नस्यात् तस्मात त्वां वदमाचिरम् । ६६ । नरके मानवा धर्म पीड्यमानाः सहस्रशः । त्राहीत्यमीचक्रँदन्ति मामतो न व्रजाम्यहम् । ६६ । कथंस्पृहां करिष्यन्ति मत्संपर्काय मानवाः । यदि मत्संनिधावेषा मुत्कर्षो नोपपद्यते । ७६ । तस्माद्यत् सुकृतंकिंचिन् ममास्ति त्रिदशाधिप । मुच्यंतां तेन नरकात् पापिनो यातनागताः ।७७।

❀ ❀

परिशिष्ट—१

(मृत्यु के सम्बन्ध में हिन्दी सन्त कवियों की अनुभव वाणी, मृत्यु तथा दुःख की अनिवार्यता, महत्माओं को विशेष दुःख, दुःख का स्वागत तथा मृत्यु द्वारा पिय मिलन की आकांक्षा ।।)

वैद धनन्तर मर गया पलटू अमर न कोय ।
सुर नर मुनि जोगी जती सबै काल वस होय ॥ —पलटू

चलती चाकी देख के दिया कबीरा रोय ।
दो पाटन के बीच में साबित रहा न कोय ।। —कबीर

माली आवत देख के कलियां करें पुकार ।
फूली फूली चुन लिये कालि हमारी बार ।। —कबीर

दूलन यह परिवार सब नदी नाव संयोग ।
उतरि परे जहं तहं चले सबै बटाऊ लोग ।। —दूलन

मित्रां दोस्त माल धन छड्डि चले सब भाई ।
संगी न कोई नानका उह हंस अकेला जाई ।। —नानक

सम्पतिविपति, विपतिसेसम्पत, देहधरेकोयहीसुभाई ।
तरुवर फूले फले परिहरे अपने काल ही पाई ।। —सूरदास

मुनि वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोध के लगन धरी ।
सीता हरन मरन दसरथ को वन में विपत परी ॥ —कबीर

नीच हाथ हरिचन्द बिकाने बलि पाताल धरी।
पांडव जिनके आप सारथी तिन पर बिपत परी॥ ,,

सुख के माथे सिल परे नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की पल पल नाम जपाय॥ ,,

हंस हंस कन्त न पाइया जिन पाया तिन रोय।
हांसी खेले पिउ मिले तौ कौन दुहागिन होय॥ ,,

जहां जहां दुख पाइया गुरु का थापा सोय।
जबहीं सिर टक्कर लगै तब हरि सुमिरन होय॥ —मलूक

सुन लो पलटू भेद यह हंसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है सुख में नरक निदान॥ —पलटू

ऐसी जरना चाहिये ज्यों चन्दन का अङ्ग।
मुख से कछू न कहत है तन को खात भुजङ्ग॥ --ग़रीबदास

नया पुराना होय ना घुन नहीं लागै जासु।
सहजो मारा ना मरै भय नहीं व्यापै तासु॥ —सहजो

भक्त मरै क्या रोइये जो अपने घर जाय॥ —कबीर

परिशिष्ट — २

(मृत्यु के सम्बन्ध में उर्दू के महा कवियों का सूक्ष्म अनुभव— भवितव्यता, संसार से निरपेक्षता तथा परलोकगत आशावाद का महत्वपूर्ण वर्णन ।)

लाई हयात आये क़ज़ा ले चली चले ।
अपनी ख़ुशी न आए न अपनी ख़ुशी चले ।।
मर्ग इक ज़िन्दगी का वक़्फ़ा है ।
यानि आगे चलेंगे दम ले कर ।। —मीर

न घबरा ऐ दिलेदामांदा अब मंज़िल क़रीब आई ।
इसी बसती के आगे और एक आबाद बसती है ।। —अमीर

ख़ुदा जाने यह किसकी जलवगाहेनाज़ है दुनिया ।
बहुत आगे गये रौनक़ वोही बाक़ी है महफ़िल की ।। —असीर

रहे जिसमें ख़तरा सदा नेस्ती का ।
पस ऐ ज़िन्दगी ऐसी हस्ती से गुज़रे ।। —हसन

अगर ये जानते चुन चुन के हमको तोड़ेंगे ।
तो गुल कभी न तमन्नाए रङ्गोबू करते ।। —ज़ौक़

गुल से येही इशारएशबनम है बाग़ में ।
रोने का है मक़ाम ये हंसने की जा नहीं ।।- अब्र-पं० बिशननरायणदर

शमअ की मानिन्द हम इस बज़्म में ।
चश्म तर आये थे दामन तर चले ।। —दर्द

चाक को तक़दीर के मुमकिन नहीं हरगिज़ रफ़ू।
सोज़ने तदबीर भी गो सौ बरस सीती रहो ॥—मीरमौहम्मदशाकिर

मुनहसर मरने पे हो जिसकी उमीद।
नाउमीदी उसकी देखा चाहिये ॥ —ग़ालिब

ग़मेहस्ती का असद किससे हो जुज़मर्ग इलाज।
शमअ हर रङ्ग में जलती है सहर होने तक॥ —ग़ालिब

ए शमअ सुबह होती है रोती है किस लिये।
थोड़ी सी रह गई है इसे भी गुज़ार दे॥ —नामालूम

क़यामे ज़िन्दगी बहरेफ़ना में ग़ैरमुमकिन है।
ये कश्ती तीर की सूरत चली जाती है तूफ़ां में ॥—आबादलखनवी

हस्ती के लिये ज़रूर इक दिन है फ़ना।
आना तेरा दलील जाने की है ॥ —अनीस

जो शै है फ़ना उसे बक़ा समझा है।
जो चीज़ है कम उसे सिवा समझा है॥ ,,

गर लाख बरस जिये तो फिर मरना है।
पैमानएउम्र एक दिन भरना है ॥ ,,

क्या ख़ूब है मौत आए जो सबसे मुझे पहले।
नाज़ुक है ये दिल दाग़े अज़ीज़ां न उठेगा॥ —असीर

ज़ीस्त कहते हैं जिसे है इज़तराब।
मौत कहते हैं जिसे आराम है॥ —असीर

परिशिष्ट—३

(ईसाई तथा अन्य धर्मों में मृत्यु पर आश्वासन)

"Blessed are they that mourn, for they shall be comforted" (Jesus Christ) "Are not two sparrows sold for a farthing ? And one of them shall not fall on the ground without your Father. But the very hairs of yuor head are all numbered. Fear ye not therefore you are of more value than many sparrows' Jesus Christ.

सेंट एमब्रोस अपने भाईके मरने पर दुखी होकर कहते हैं कि भाई मुझे भी शीघ्र बुलालो, और कोई मेरे चित्त की शान्ति का उपाय नहीं। पुनर्मिलन द्वारा ही शान्ति प्राप्त हो सकती है ॥

"What other consolation is left me but this that I hope to come to thee, my brother, speedily, that thy departure will not entail a long separation between us, and that power may be granted me by thy intercessions, .that thou mayest summon me who long to join thee more speedily." —St. Ambrose.

मृत्यु ईश्वर के मनुष्य-प्रेम का तीव्र वेग है —'God's speed of love'. Ibid.

नीचे लिखे पद्यों में परलोक-जीवन की उत्तमता तथा ईश्वर के माध्यम द्वारा पुनर्मिलन की आशा प्रकट की है—

Earth has no sorrow that Heaven cannot cure. (Wordsworth). Anaxagoras the philosopher being told that both his sons were dead, laid his hand upon his heart and after a short pause consoled himself with a reflection couched in these words, 'I knew they were mortal'. Mohamet at the death of his son said:, My heart is sad, mine eyes are flowing with tears at parting with thee, O my son, and still greater would be my grief, did I not know that I must soon follow thee, for we are of God, from Him we come, and to Him we must return.—Irving's Life of Mohamet.

He is not dead, the child of your affection, But gone into that School, Where he no longer needs your poor protection, And Christ Himself dothr ule.

Death hides but it does not divide—

Thou art but on Christ's other side;
Thou art with Christ and Christ with me,
In Him I still am close to thee.

सैंट फ्रांसिस ईश्वरेच्छा के आधीन इस प्रकार शान्ति प्राप्त करते हैं

"Be praised my Lord, for those...who endure sickness and tribulation; blessed are they who endure in peace, for by Thee Most High shall they be crowned." "Be praised, my Lord, for our bodily death from which no living man can escape, woe unto them who die in mortal sin.—Verily I say unto thee that no man may call himself a perfect friend of God until he hath passed through many temptations and tribulations: So great the bliss I hope to see, that every pain delighteth me. **(St. Francis of Assisi)**

अधोलिखित विचारों द्वारा भी शान्ति प्राप्त होती है :-

"When we are called upon to suffer, let us recall to mind the torments our Lord, endured, and immediately everything will become light and sweet to us.

(St. Francis De Sales)

"Death and love are the two wingswhich bear

men from earth to Heaven — Michael Angelo. "Why will you call it 'Death's dark night' ? Death is the entrance into Light; Behind its cloudy purple gates, The everlasting morning waits". (C.Noel.) "Dead are not lost but gone before'. "We are all around you without your seeing us". "Life is real, life is earnest And the grave is not its goal, Dust thou art to dust returnest Was not spoken of the soul" (Long fellow)

"It is God's will that His creatures should have many troubles and that they should die" ÷ Natural law is God's way of doing things.

We lose the high signification of omnipotence, when after admitting that God or good is omnipresent and has all power, we still believe that there is another power named evil. (Mrs. Eddy) Yea, though I walk through the valley of the shadow of death, I will fear no evil: for Thou art with me; thy rod and thy staff, they comfort me. Psalm 23,4)

"His soul is not his own, for it is subject to birth."

"Whom the Lord loveth, He chasteneth"

In all adversity, He is no adversary.—[Isaiah LX 111.9] The things which are seen are temporal, but the things which are not seen immortal—Rashdall. 'Non omnis moriar—I shall not all die (**Marcus Aurelius**) 'Thou hast departed living, thou hast not departed dead.' [Pyramid Texts] 'I live after death like the sun daily.' 'I live and am saved after the foe death'. 'I go forth from this day a pure spirit'. 'It is in glory'. 'I am unchangeable' **(The Book of the Dead-Egyptian)** "All goes onward and outward, nothing collapses And to die is different from what any one supposed, and luckier". "It is not chaos or death—it is form, union, plan-it is eternal life—it is happiness". "The past and present wilt-I have filled them, emptied them, And proceed to fill my next fold in the future." "What is known I strip away, "I launch all men and women forward with me into the Unknown. The clock indicates the moment —but what does eternity

indicate." Births have brought us richness and variety. And other births will bring us richness and variety. I do not call one greater and one smaller. That which fills its period and place is equal to any" "And I will show that there is no imperfection in the present and can be none in the future, And I will show that whatever happens to anybody, it may be turned to beautiful results. And I will show that nothing can happen more beautiful than death". (**Walt Whitman**)

There is nothing shocking in early death—"Whom the gods love die young". (**Dean Inge**)

❀ ❀ ❀

परिशिष्ट—४

(Spiritualism पितृ विद्या का एक उदाहरण)

महाभारत में वर्णन है कि व्यास मुनि की सहायता से परलोकगत कौरवपाण्डवों को धृतराष्ट्रादि लोग देख सके थे और महादेव की कृपा से व्यास को अपने स्वर्गवासी पुत्र शुक की छाया देखने का सामर्थ्य प्राप्त हुआ था। यह भी वर्णन है कि सिद्धपुरुष जीव को शरीर छोड़ते हुए देख सकते हैं (नोट १६,२४) ॥ छान्दोग्य उपनषिद में यह वचन है कि सिद्ध पुरुष के संकल्प में यह बल होता है कि वह पितरों से भेट कर सकता है—स यदि पितृलोककामोभवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति (६, ८, २, १) (ब्र. सू. शांकरभाष्य ४, ४, ४, ८) योगशास्त्र के अनुसार ऐसी सिद्धि संयम द्वारा प्राप्त होती है ॥ किन्तु ऐसे पुरुष भी संसार में पाये जाते हैं जिन्हें यह संकल्पसिद्धि जन्म से प्राप्त है ॥ हमारे प्रियपुत्र पंडित चन्द्रशेखर जी कल्ला का २४ वर्ष की आयु में २१ मई सन् १६३६ को स्वार्गवास होनेपर उन की एक नेकटाई लेकर हमारे मित्र मिस्टर रिचर्डसन प्रोफ़ेसर मिशन कालिज देहली, सितम्बर १६३६ में लन्दन जाकर फ्रैंक ली साहब से मिले। इनका पूरा नाम और पता यह है—Frank Leah,

Grotrian hall, wigmore street, London WII ली साहब पितरों से भेट कराने में संकल्पसिद्ध-प्रसिद्ध हैं ।। नेकटाई को स्पर्श कर यह ध्यानावस्थित हुए और उन्होंने चन्द्रशेखर जी का यह संदेश उचारण किया—

No one to worry about me -very happy·(bow gone absolutely cold.) It was time for me to go. No doctors could save me, Don't worry about doctor's mistakes. It is natural to grieve but if one grieves unnaturally, it grieves those for whom one grieves. Hindu professor dealing in dead languages.

अर्थात मेरी कोई चिन्ता न करो ! मैं बहुत खुश और अच्छी तरह हूँ। मेरा यह काल नियत था। डाक्टर नहीं बचा सकते थे, उनको गलतियों की चिन्ता मत करो। तुम्हारे अधिक शोक करने से मुझे शोक होता है। यह सन्देश हिन्दू प्रोफ़ेसर के लिये है जो मुर्दा-ज़बानों को पढ़ाते हैं" ।। इन बचनों से यूँ प्रतीति होती है कि मरने से पहले ही चन्द्रशेखर जी यह कहने लगे थे कि मैं अब बिलकुल अच्छा हूं। और उन्हों ने मुसकराते हुए मौत का सामना किया था। मरने के पीछे इनके इलाज के भूल की चिन्ता भी यहां सबको बहुत दुख देती रही है। मरने से पहले सब को दुखी देख कर यह भी कहते थे—दुखी मत हो तुम्हारे दुख से मुझे दुख

होता है ॥ मुरदाज्ञ बानों के पढ़ाने का मज़ाक़ यह पहले भी किया करते थे ॥ ली साहब को जो शकल दिखाई दी, उसका चित्र उन्होंने खेंचा जो यहां छपा है ॥



इस चित्र में छोटी मूंछे, नाक, आंखें, चोड़ा माथा, असली शकल से मिलते हैं ॥ २७ नवम्बर १९३६ की चिट्ठी में ली साहब

लिखते हैं कि उन्हें चन्द्रशेखर जी फिर दिखाई दिये, मगर इतनी जल्दी में कि ली साहब आंखें ही अच्छी तरह देख सके, जिनको देखकर यह प्रतीति होती थी कि चन्द्रशेखर जी आश्वासन दिला रहे हैं। ली साहब लिखते हैं कि फिर अच्छी तरह दिखाई देने पर वह चन्द्रशेखर जी की एक साफ़ तसवीर खेंचकर भेजेंगे और जो संदेश प्राप्त होगा वह भी लिखेंगे ॥ विज्ञान वेत्ताओं की साक्षी से पितृविद्या में विश्वास उत्पन्न होकर चित्त को आश्वासन होता है ॥

❀ ❀

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर छै नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का अर्थदण्ड लगेगा।
